# विवेक-रश्मि

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष – १०　　अगस्त – १९९१　　अंक ८

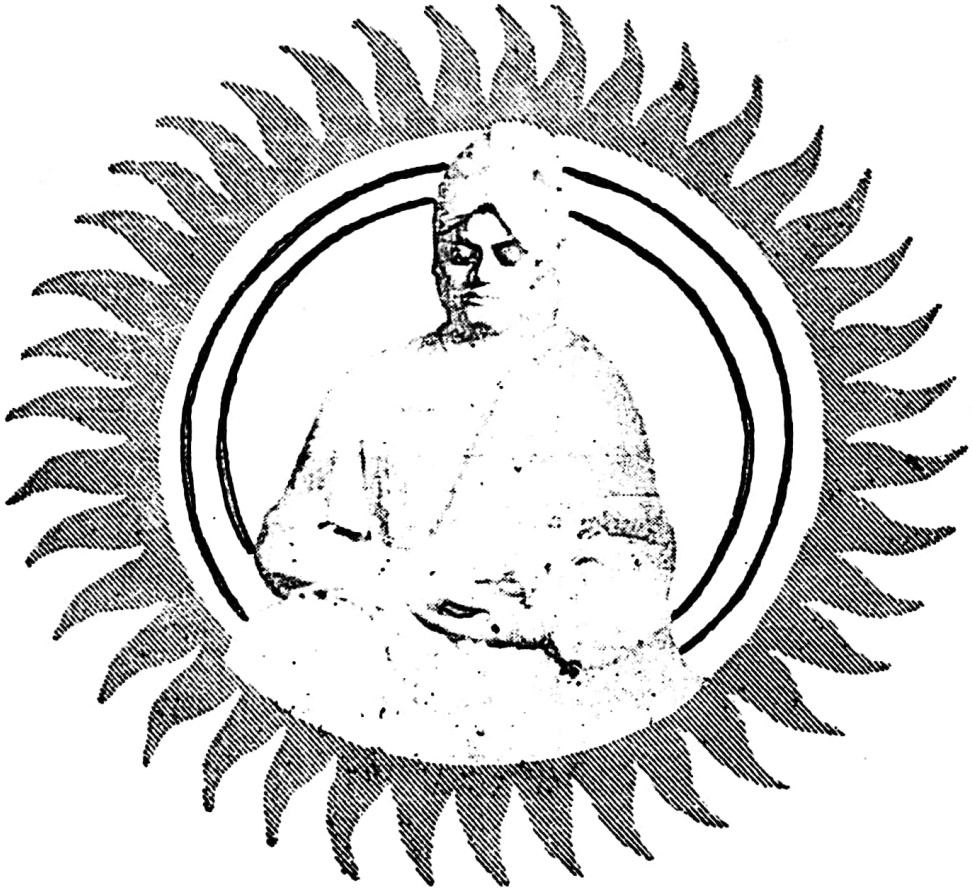

कर्म ज्ञान, भक्ति और योग – इनमें से एक या अनेक या सबके द्वारा परमात्मा उपलब्ध होते हैं।

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१३०१

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनुप —रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव संखपाल—(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन मेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री मुकुन्द प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर बमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता - परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे—पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष —इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा—अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आई. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९ . श्री सुभाष वासुदेव—तुमसिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री वसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद - जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)

# इस अंक में


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. श्रीरामकृष्ण ने कहा है | | १ |
| २. श्रीरामकृष्ण स्तवन | स्वामी वागीश्वरानन्द | २ |
| ३. विज्ञान और दर्शन : स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में | स्वामी ब्रह्मेशानन्द | ३ |
| ४. क्षुरस्य-धारा (२) | स्वामी त्यागानन्द | ९ |
| ५. रस के वस में चार रात | श्री फणीश्वरनाथ रेणु | १५ |
| ६. एक दुर्लभ भेंट | | २५ |
| ७. कम्बल ने नहीं छोड़ा (विवेकानन्द की कहानी) | | २८ |
| ८. विवेक चूड़ामणि | स्वामी वेदान्तानन्द | २९ |
| ९. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा | चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय | ३१ |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१० १९९१—अगस्त अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य | ३०० रु० |
| वार्षिक | २५ रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से | ४० रु० |
| एक प्रति | ३ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जैसे साँप को देखने से लोग कहते हैं, 'माँ मनसा, तुम अपना मुँह न दिखाओ, पूँछ भर दिखाती हुई चली जाओ,' वैसे ही जिनसे कामवासना उत्तेजित होने की सम्भावना हो ऐसे प्रलोभन से पहले ही दूर हो जाना उचित है, ताकि उनके सम्पर्क में आकर पतन न हो पाए।

(२)

अगर मैं अपने को इस अँगौछे की ओट कर लूँ तो तुम मुझे नहीं देख सकते। पर मैं तुम्हारे बिल्कुल नजदीक ही हूँ। इसी भाँति, और सभी चीजों की अपेक्षा ईश्वर ही तुम्हारे सबसे ज्यादा निकट हैं, किन्तु इस अहंरूपी आवरण के कारण तुम उनके दर्शन नहीं पाते।

(३)

जिस प्रकार एक ही किस्म का मुखौटा लगाकर कई तरह के लोग घूम सकते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का चोला धारण कर घूमनेवाले तरह-तरह के प्राणी पाये जाते हैं। ऊपर से सभी मनुष्य जैसे दिखाई देते हैं, पर कोई खतरनाक चीता है, तो कोई भयंकर रीछ; कोई धूर्त लोमड़ी है, कोई जहरीला साँप।

(४)

दुर्जन व्यक्ति का मन घुँघराले बाल की तरह होता है। जिस प्रकार कितनी भी कोशिश करो पर घुँघराले बाल को सीधा नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति के मन को प्रयत्न करने पर भी सरल, शुद्ध नहीं किया जा सकता।

(५)

संसारी जीव संसार में सदा असह्य दुःख क्लेश भोगता रहता है किन्तु फिर भी वह कामिनी-कांचन का चस्का छोड़कर भगवान् में मन नहीं लगा पाता।

# श्रीरामकृष्ण—स्तवन

—स्वामी (ब्रह्मलीन) वागीश्वरानन्द

( राग-भूपाली । ताल रूपक )

नाथ तुम भव भय निवारी,
भगत चित—आनन्दकारी ।
प्रेमधन तव करुण आनन
शोक वारण तापहारी ।। ध्रुव ।।
पूर्ण ब्रह्म तुम्हीं सनातन
नित्य निर्गुण निराकारी ।
भक्त कारण देह धारण
भुवन पावन रूपधारी ।।१।।

सुरधुनी तट करत लीला
दक्षिणेश्वर के पुजारी ।
सिद्धिदाता बने साधक
सर्वधर्म मतानुसारी ।।२।।

कामकांचनलेश—विरहित
घोररिपु बलदलनकारी ।
मोहमाया भ्रम हरो प्रभु
शरण आये हम तुम्हारी ।।३।।

# विज्ञान और दर्शन : स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

मानव जाति जिस महिमा मण्डित आदर्श की ओर अग्रसर हो रही है, उसकी गौरवमय परिसमाप्ति एवं परिपूर्णता के लिए प्राच्य एवं पाश्चात्य दैवी अदृष्ट विधान के अनुसार अपनी पृथक-पृथक भूमिका निभाते चले आ रहे हैं। पाश्चात्य ने प्रमुखतः भौतिक पदार्थों के स्वरूप के विषय में अनुसन्धान किये हैं जबकि प्राच्य ने आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा अन्तर्जगत के नियमों को जानने के लिए धर्म के क्षेत्र में प्रयोग किये हैं। बाह्य जगत का ज्ञान एव बहिर्प्रकृति पर विजय तथा अन्तर्जगत का ज्ञान एवं नियमन ये दोनों ही मानव जाति के विकास के लिए आवश्यक हैं।

पाश्चात्य विज्ञान और प्राच्य दर्शन इन दोनों का स्वस्थ संतुलन एवं सुखद सम्मिश्रण करने में स्वामी विवेकानन्द कई कारणों से अत्यन्त उपयुक्त एवं सक्षम थे। उन्हें भारतीय संस्कृति धरोहर के रूप में प्राप्त हुई थी। उनका जन्म तथा शिक्षा-दीक्षा एक हिन्दू परिवार में धार्मिक वातावरण के बीच हुआ था। एक मेधावी विद्यार्थी के रूप में युवावस्था में ही उन्होंने पाश्चात्य दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन किया जिसने कुछ समय के लिए ईश्वर एवं अतीन्द्रिय जगत के सत्यों में उनकी निष्ठा को झकझोर दिया। लेकिन पाश्चात्य दर्शन उनकी सत्य के लिए अतृप्त असीम पिपासा को तृप्त नहीं कर सका। वे सत्य की रूप रेखा मात्र से संतुष्ट होने वाले नहीं थे चाहे वह कितनी ही सुन्दर और युक्तिपूर्ण क्यों न हो। वे तो यथार्थ सत्य चाहते थे जो युक्तिवादी पाश्चात्य दर्शन उन्हें प्रदान करने में असमर्थ था। ऐसी ही एक संशयात्मक अज्ञेयवादी मनः स्थिति को लेकर फिर भी सत्य के एक ईमानदार अन्वेषी के रूप में वे श्रीरामकृष्ण के पास आये। श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व में भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति, त्याग, तपस्या और अतिन्द्रीय राज्य की अनुभूतियाँ मानो घनीभूत हो गयी थीं। वे प्राच्य विशेष कर भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के, औपनिषदीय भारत के मानो घनिभूत विग्रह स्वरूप थे। स्वामी विवेकानन्द जो उस समय नरेन्द्रनाथ दत्त थे, समस्त आधुनिक सशयों और प्रश्नों को लेकर सत्यों को खोजते उनके पास आये। वे प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा सिद्ध किये बिना किसी भी वस्तु को, यहाँ तक कि अध्यात्मिक जगत के उच्चतम सत्यों को भी, स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र का मिलन दो विचार-धाराओं, संस्कृतियों एवं दृष्टिकोणों के मिलन के सदृश था। इसके परिणाम स्वरूप एक नवीन दर्शन और जीवन के प्रति एक अभिनव धार्मिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ जहाँ पुरातन भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण दृढ़तर, अधिक व्यापक और उदात्तता को प्राप्त होकर आधुनिक ज्ञान राशि को अपने में आत्मसात करने में समर्थ हुआ। नये आदर्श में पाश्चात्य की अथक कर्म शीलता के साथ प्राच्य की ध्यान-प्रवणता कठोर तपस्या और निवृत्तिपरक जीवन के साथ कर्म और दूसरों के प्रति सेवा का संयोग किया गया। इन दो भाव-धाराओं – जिनके प्रतिनिधि श्रीरामकृष्ण व स्वामी

विवेकानन्द थे—के एक दूसरे में विलय से गौरवमय भविष्य के नये धर्म का जन्म हुआ जिसमें सभी के लिए स्थान था और किसी को भी त्यागा नहीं गया था :

**धर्म की वैज्ञानिकता**

पाश्चात्य विज्ञान तथा प्राच्य दर्शन, विशेषकर वेदान्त के बीच मेल मिलाप करने का स्वामी विवेकानन्द ने विभिन्न प्रकार से प्रयास किया था। सर्वप्रथम तो उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि जगत तथा उसके क्रिया कलापों के प्रति वेदान्त का दृष्टिकोण अवैज्ञानिक नहीं है। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि समग्र वैज्ञानिक गवेषणा के दो मूल भूत सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त में भी पाये जाते हैं। विज्ञान जिस यौक्तिक प्रणाली का आश्रय लेता है वह अद्वैत वेदान्त को भी स्वीकार्य है। बौद्धिक गवेषणा का पहला मूल सिद्धान्त है: विशेष की सामान्य से सामान्य की अधिक सामान्य से अन्ततः सार्वभौम सामान्य प्राप्त होने तक व्याख्या करना। मैं सड़क पर एक विशेष प्राणी, एक मानव प्राणी विशेष को देखता हूँ। उसे एक बृहत्तर धारणा "मानव" में न्यस्त करता हूँ। और मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ। मैं उसे अधिक सामान्य धारणा में न्यस्त करके यह जानता हूँ कि वह मानव है। विशेष को सामान्य से सामान्य को अधिक सामान्य से और अन्त में सब को सार्वभौम सामान्य से, ऐसी व्यापकतम धारणा सत्ता की धारणा से सम्बद्ध करना है।

वैज्ञानिक ज्ञान का दूसरा सिद्धान्त है किसी वस्तु या घटना की व्याख्या उसके बाहर से न होकर भीतर से प्राप्त हो। प्राणियों के क्रम विकास का सिद्धान्त इसी तथ्य का एक रूप है जिसके अनुसार कार्य कारण का ही परिवर्तित रूप है। कारण ही कार्य के रूप में परिणत होता है तथा कार्य की समस्त संभावनाएँ पहले से ही कारण में विद्यमान रहती हैं। समस्त सृष्टि शून्य से उत्पन्न नहीं हुई है बल्कि एक कारण विशेष का विकास मात्र है।

स्वामीजी ने यह बताने का प्रयास किया कि वेदान्त वैज्ञानिक चिन्तन की इन दोनों शर्तों को पूरी करता है क्योंकि वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म ही व्यापकतम धारणा है। हम सभी मानव हैं। कुत्ते, बिल्ली, मानव, पेड़, पौधे व्यापकतर धारणा, प्राणी के अंग हैं। फिर ये समस्त जड़ और चेतन पदार्थ उस विराट सत् के अन्तर्गत हैं। और यह सत्ता, व्यापकतम सामान्य ही वेदान्त का ब्रह्म है। इसी से समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई है, वही आदि कारक है तथा जगत् की क्षुद्रतम और स्थूलतम वस्तु उसी आदि कारण का अंतिम कार्य है।

विज्ञान का तीसरा सिद्धान्त जो वेदान्त के के निष्कर्षों के साथ मेल खाता है: सभी वस्तुओं की नैसर्गिक एकता! आधुनिक विज्ञान बार-बार जिस तथ्य की पुष्टि कर रहा है वह है कि हम सब एक हैं— मन, देह और आत्मा तीनों दृष्टि से। स्वामीजी के द्वारा कहे जाने के लगभग एक शताब्दी बाद आधुनिक परमाणु विज्ञान इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहा है, सम्पूर्ण सृष्टि एक जड़ सागर के समान है और हम सब उसकी छोटी-छोटी भँवरें हैं। "मेरी देह में आज जो जड़ पदार्थ है वह कुछ वर्षों पूर्व तुम्हारी देह या सूर्य या किसी पौधे या अन्य किसी नक्षत्र में सदा परिवर्तनशील अवस्था में रहा होगा। विचारों का भी यही हाल है यह विचार सागर है जिसमें तुम्हारा और मेरा मन भँवरों के समान है। हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार हमारे विचार एक दूसरे के मन में प्रवेश कर रहे हैं। इससे भी व्यापक स्तर पर समान्यीकरण करने पर ज्ञात होता है कि जड़ प्रदार्थ और विचार का सार उनमें अन्तर्भूत आत्मा है, जो अनिवार्यतः एक होना चाहिए। गर्वित मनुष्य से कहा जाता है कि तुम वही हो जो एक साधारण कीट है। यह न सोचो कि तुम उससे पूर्णतया भिन्न हो। समस्त प्राणियों के साथ एकत्व व समभाव का यह महान सन्देश अनुकरण योग्य है क्योंकि हम महत्तर प्राणियों के साथ एक होने में बड़े हर्ष का अनुभव करते हैं

किन्तु कोई भी निम्नतर प्राणियों के साथ एकात्मता की अकांक्षा नहीं करता।"

स्वामी विवेकानन्द ने यह भी स्पष्ट किया कि विज्ञान की अन्य किसी भी शाखा की तरह धर्म की भी अपनी क्रिया प्रणाली, पद्धति, मौलिक सिद्धान्त और निष्कर्ष हैं जो अनुभव एवं युक्त पर आधारित हैं। योग शास्त्र ऐसा ही एक विज्ञान है जो प्रत्यक्ष अनुभव गम्य सत्य पर आधारित है जिनकी सत्यता कोई भी व्यक्ति स्वयं अनुभव द्वारा प्रमाणित कर सकता है। योग में गवषेणा का विषय मन स्वयं होता है और गवषेणा का यन्त्र भी शुद्ध संयत प्रशिक्षित एवं एकाग्र मन ही होता है। योग में मन के द्वारा मन का अनुसन्धान किया जाता है। पर फिर भी वह है तो एक विज्ञान ही जिसमें बारीक से बारीक बात का गहरा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक क्षेत्र में, अन्तर जगत में, गवेषणा की अपनी एक विधा है उसमें अपने वैष्ट्रिय के अनुरूप अनुसंधान के यन्त्र हैं, युक्ति द्वारा इसके परिणामों की जांच की जाती है तथा इस युक्ति संगत निर्णय की पुनः प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा सत्यता सिद्ध की जाती है। इस तरह धर्म अपने आप में एक सम्पूर्ण विज्ञान है।

**विज्ञान के दावों का खण्डन :**

धर्म एवं विज्ञान के परस्पर टकराव को स्वामी विवेकानन्द ने एक दूसरे प्रकार से भी समझाने का प्रयत्न किया। मानव को प्रभावित करने के लिए विज्ञान जो बढ़ा चढ़ा कर दावे प्रस्तुत करता रहा है, स्वामी विवेकानन्द ने उनकी आलोचना की। धार्मिक अन्ध विश्वासों की तरह वैज्ञानिक अन्ध-विश्वास भी होते हैं। लोग विज्ञान की सभी बातें बिना विचारे स्वीकार कर लेते हैं। अगर आईन्स्टीन या डार्विन आदि किसी बड़े वैज्ञानिक का नाम उद्धृत किया जाय तो लोग उस बात को शीघ्र स्वीकार लेते हैं। स्वामीजी ने क्रम विकास के सिद्धान्त एवं आधुनिक जड़वाद के सिद्धान्तों को युक्ति और विचार के द्वारा परखा तथा उन्हें अपूर्ण असंतोषप्रद पाया। उनकी यह निश्चित मान्यता थी कि विशुद्ध जड़वाद अथवा उपयोगिता वाद (Utilitarianism) पर आधारित सिद्धान्त मानव के समग्र अस्तित्व के रहस्यों को समझाने अथवा उनके जीवन की सभी समस्यायों का समाधान प्रदान करने में असमर्थ हैं।

क्रम विकासवाद के सिद्धान्त की अपूर्णता बताते हुए स्वामीजी ने कहा कि प्रत्येक क्रम विकास के साथ क्रम संकोच को भी स्वीकार करना होगा। असत् से सत् की उत्पत्ति संभव नहीं है। इसी तरह किसी मशीन से हम उतनी ही उर्जा प्राप्त कर सकते हैं जितनी की उसमें नियोजित की गयी हो। अगर मानव एक अमीबा या क्षुद्र जीवाणु सम अविकसित प्राणी का विकसित रूप हो तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि बुद्ध, ईसा आदि पूर्ण मानव उस कोषाणु में संकुचित एवं अविकसित रूप में सदा विद्यमान थे। यही नहीं उच्चतर जीवन के लिए हमारे द्वारा किये जा रहे संघर्ष यही सिद्ध करते हैं कि हम कभी उच्च अवस्था को प्राप्त हुए थे और अब उससे पतित हो गये हैं।

एक और विवादास्पद दार्शनिक विषय पर स्वामीजी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। स्थूल पदार्थों की संहति से सूक्ष्म विचारों अथवा मानसिक शक्ति की उत्पत्ति होती है, अथवा विचार स्थूल शरीर का गठन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार यह मानना कि विचार शरीर नामक यंत्र के अंग-प्रत्यंगों के विशिष्ट प्रकार के सम्मिलन मात्र से पैदा होते हैं, समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं करता। क्योंकि शरीर का निर्माण किस शक्ति के द्वारा होता है, कौन सी शक्ति जड़ पदार्थों को परस्पर संयुक्त करके देह का निर्माण करती है, यह प्रश्न फिर भी बना ही रह जायेगा। आत्मा अथवा विचार नामक ऊर्जा का कारण स्थूल देह है, यह कथन तो मानो गाड़ी को बैल के आगे जोतने जैसा है। कारण कार्य से सदा सूक्ष्मतर होता है। हमें उसी सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए जो अधिकतम तथ्यों का समाधान प्रस्तुत

कर सके। अतः यह कहना ही अधिक युक्ति युक्त है कि जो शक्ति जड़ पदार्थों को मिला कर स्थूल देह का निर्माण करती है, वही देह के माध्यम से प्रकट होती है

यह मानना भी युक्ति संगत नहीं है कि जड़ पदार्थ से ऊर्जा पैदा हो सकती है। इसके विपरीत यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जिसे जड़ पदार्थ कहा जाता है उसका अस्तित्व ही नहीं है। वह केवल शक्ति या ऊर्जा की एक अवस्था मात्र है। घनत्व, काठिन्य, स्थूलता आदि जड़ पदार्थ की अवस्थाएं गति के परिणाम स्वरूप हो सकती हैं। जलीय पदार्थों के प्रवाह को वेगवान करने से उनमें स्थूल पदार्थों जैसी शक्ति आ जाती है। एक वेगपूर्ण जल की धारा की मार पथ्थर की मार से कम नहीं होती। इसी तरह वायु का अत्यन्त तीव्र वेग जैसा कि एक बवण्डर में होता है, उसे स्थूल पदार्थ की शक्ति प्रदान कर देता है तथा वह जड़ चट्टान तक को तोड़ सकता है। अगर मकड़ी के जाले के तार को असीमित तीव्र गति से चलाया जाय तो वह एक लोहे की जंजीर के समान कठोर हो जायेगा, तथा एक विशाल वृक्ष के मोटे तने को भी काट डालेगा।

अमेरिका में अनेक अवसरों पर स्वामी विवेकानन्द को नास्तिकों अज्ञेयवादियों, भौतिकवादियों, तथा तथाकथित युक्तिवादियों और स्वतंत्र विचारकों से विभिन्न दार्शनिक विषयों पर वार्तालाप करने का अवसर मिला था। उन्हें उन्हीं के सिद्धान्तों के द्वारा पराजित करते हुए स्वामीजी ने यह दिखाया कि जड़ पदार्थ की धारणा ही एक दार्शनिक मान्यता मात्र है। भौतिकवाद अन्ततोगत्वा उस दार्शनिक चिन्तन पर ही आधारित है, जिसकी वे लोग निन्दा करते हैं। उनके बहु-कल्पित असंख्य नियम तथा सिद्धान्तों का मानव मन के बाहर कोई अस्तित्व ही नहीं है। स्वामीजी ने बताया कि उनका भौतिकवादी विज्ञान यथार्थ ज्ञान की तुलना में ही असत्य सिद्ध नहीं होता बल्कि उन्हीं सिद्धान्तों और नियमों द्वारा असत्य प्रमाणित होता है, जिस पर वह आधारित है। विशुद्ध तर्क या युक्ति अपनी सीमा को स्वीकार करने को बाध्य है। युक्ति स्वयं युक्ति के परे तत्व का संकेत प्रदान करती है। युक्ति वाद को यदि उसकी चरम परिणति तक ले जाया जाय तो वह अन्ततोगत्वा एक ऐसे तत्व तक हमें पहुँचायेगा जो जड़ पदार्थ, ऊर्जा, शक्ति और मन के परे है। प्रत्यक्ष पर आधारित, यथार्थ केन्द्रित ज्ञान हमें बुद्धि और इन्द्रिय के परे नहीं ले जा सकता तथा उस अतीन्द्रिय सत्य का साक्षात्कार नहीं करा सकता जो समस्त जगत् प्रपंच का आधार तथा कारण है। मानव बाह्य जगत् के बारे में जो कुछ जानता है वह देश काल की सीमा में इन्द्रियों के विषयों के संस्पर्श में आने से प्राप्त ज्ञान का परिणाम ही है। अतः मानव-मन देश काल के परे की किसी भी वस्तु को नहीं जान सकता। इन्द्रिय संवेदन तथा तद्द्वारा उत्पन्न ज्ञान व्यक्ति के मन की धारणाओं के द्वारा प्रभावित होता है। पश्चात्य मनीषी अभिव्यक्त चेतना से पृथक किसी चैतन्य सत्ता के अस्तित्व को जानने म असमर्थ रहे हैं। अतः वे चरम सत्य के विषय में अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य विज्ञान जीवन एवं अस्तित्व से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान प्रदान नहीं कर सकता।

### धर्म एवं विज्ञान का सामंजस्य

विज्ञान की सीमाओं को प्रदर्शित करते हुए भी स्वामी विवेकानन्द विज्ञान की उपयोगिता और उसके धर्म के साथ सामंजस्य की संभावना से भी अवगत थे। धर्म एवं विज्ञान दोनों ही ज्ञान की दो विधाएँ हैं, जो प्रकृति के नियमों को जानने का प्रयत्न करती हैं। विज्ञान तथाकथित भौतिक जगत के स्वरूप को जानना चाहता है तो धर्म मन के उस सूक्ष्म जगत् का अन्वेषण करना चाहता है जिसके माध्यम से बाह्य जगत की जानकारी

होती है । अतः धर्म की खोज का दायरा अधिक गहरा है । इस रूप में धर्म विज्ञान का ही विस्तार है । जिस प्रकार जड़ प्रदार्थ और मन एक दूसरे से सम्बंधित हैं, पृथक नही, उसी प्रकार विज्ञान और धर्म भी परस्पर सम्बंधित हैं । अतः सत्यानुसंधान में मानव के प्रयत्नों में विज्ञान और धर्म की विधाएं एक अविभाज्य शृंखला के समान हैं । स्वामी विवेकानन्द ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि अन्तर्जगत और बाह्यजगत पृथक नहीं हैं, तथा प्रत्येक स्तर पर स्थूल जगत सूक्ष्म में, तथा विज्ञान, दर्शन में पर्यवसित हो जाता है ।

स्वामी विवेकानन्द भारत की भौतिक समृद्धि के लिए विज्ञान की आवयश्यकता को अच्छी तरह से समझते थे । आज से एक शताब्दी पूर्व सन् १८८८ में वे भारत की जनता के लिए शुद्ध पेयजल की नितान्त आवश्यकता के प्रति सजग थे । भारत की भौतिक उन्नति में उनकी विशेष रुचि थी, इसलिए वे अमेरिका में बड़ी उत्सुकता के साथ तकनीकी तथा औद्योगिकी प्रतिष्ठानों को देखते थे या उसी तरह के उद्योगों को भारत में प्रारंभ करने के लिए धन संग्रह का भी प्रयत्न करते थे । उनकी प्रारंभिक योजना सर्वत्यागी निष्ठावान संन्यासियों का एक संघ तैयार करने की थी जो परंम्परागत रूप से अध्यात्मिक ज्ञान के साथ साथ विभिन्न यन्त्रों की सहायता से लौकिक और आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा का भी घर-घर प्रचार और प्रसार करें ।

इसके साथ ही साथ वे यह भी भलीभांति जानते थे कि भौतिक उन्नति के साथ ही भौतिकवादी मनोवृत्ति एवं जड़वाद का भी विस्तार होता है । एक ओर तो स्वामीजी चाहते थे कि भारत की भौतिक प्रगति हो तथा भारत की जनता को भोजन ही नहीं बल्कि थोड़ा भोगविलास भी मिले । तो दूसरी ओर वे सामाजिक और राजनैतिक विचारों के प्रचार के पूर्व समग्र भारत को आध्यात्मिक और धार्मिक विचारों द्वारा प्लावित कर देना चाहते थे । वे पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के अन्धानुकरण के विरोधी थे तथा उन्होंने उसके विरुद्ध बार बार चेतावनी दी थी । शुरू में तो वे पाश्चात्य देशवासियों विशेष कर अमेरिका वासियों की अद्भुत संघबद्धता के द्वारा मोहित से हो गये थे । वे लोग थोड़े ही प्रयास में एक स्थायी संस्था या संगठन बना सकते हैं जैसा भारतीय नहीं कर सकते । लेकिन कुछ दिनों बाद ही अपनी तीक्षण अन्तर्दृष्टि के द्वारा स्वामीजी इस प्रकार के संगठनों के पीछे निहित स्वार्थ को पहचानने में समर्थ हुए थे । वे जानते थे कि वे धूर्त भेड़ियों के एक झुण्ड के समान थे जो मात्र दूसरों का शोषण करने के लिए एक जुट हुए हों । स्वामी जी ने बताया कि बहु प्रशंसित पाश्चात्य सभ्यता मूलतः अपने पड़ोसी मानव के संहार की कला में में ही निपुण है ।

यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश लोग सत्यानुसन्धानी अथवा सही माने में धार्मिक नहीं होते । वे सामान्यतः अर्थ और काम ही चाहते हैं । भारत जैसे धार्मिक देश में भी यही बात है । लेकिन भारत की विशेषता यह है कि सारा समाज अध्यात्म केन्द्रित है, आध्यात्मिक भित्ति पर आधारित है । भारत के समाज एवं जीवन पद्धति का गठन इस प्रकार हुआ है कि भौतिक सुख व समृद्धि के लिए प्रयत्नशील होते हुए भी धीरे-धीरे व्यक्ति जीवन के आध्यात्मिक चरम लक्ष्य की ओर प्रेरित होता रहता है ।

तकनीकी की आधुनिक वृद्धि के परिणाम स्वरूप भौतिक विकास की काफी सुविधा हो गयी है लेकिन इससे भारत की संस्कृति के आध्यात्मिक आधार या अन्तर्प्रवाह को भी खतरा पैदा हो गया है । दैनन्दिन जीवन को अध्यात्मिक पुट प्रदान करने के लिए, हमारे प्रत्येक कार्य के आध्यात्मिकीकरण के लिए एक नयी प्रणाली, नयी साधना पद्धति की आवश्यकता है । स्वामी विवेकानन्द ने हमें यह प्रदान की है । उनके जीवन का उद्देश्य

एवं संदेश भी यही था—"मानव जाति को उसके देवत्व की शिक्षा देना तथा यह बताना कि उसे जीवन के प्रत्येक स्तर पर किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाय"। सर्वप्रथम तो स्वामीजी ने विभिन्न प्रकार से दार्शनिक युक्ति एवं विचार की सहायता से चरम आध्यात्मिक सत्ता के आस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। मानव की ईश्वर के रूप में सेवा ही वह उपाय है जिसके द्वारा जीवन को आध्यात्मिक दिशा प्रदान की जा सकती है।

भगिनी निवेदिता की भाषा में "यदि एक और अनेक सचमुच एक ही सत्य हैं, तो केवल उपासना के ही विविध उपाय नहीं वरन् सामान्य रूप से कर्म के सभी प्रकार, संघर्ष के सभी प्रकार, सृर्जन के सभी प्रकार भी सत्य साक्षात्कार के मार्ग हैं। अतः लौकिक और धार्मिक में अब आगे कोई भेद नहीं रह जाता। कर्म करना ही उपासना करना है। विजय प्राप्त करना ही त्याग है, स्वयं जीवन ही धर्म है। प्राप्त करना और अपने अधिकार में रखना उतना ही कठोर न्यास है, जितना कि त्याग करना और विमुख होना "स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "कारखाना, अध्ययन कक्ष, खेत और क्रीड़ा भूमि आदि भगवान के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान हैं जैसे साधु की कुटी या मन्दिर का द्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है।" एक बार स्वामीजी ने कहा था "कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के त्रिविधि माध्यम हैं। लेकिन इसे समझने एवं समझाने के लिए निश्चय ही हमें अद्वैत का सिद्धान्त चाहिए।"

**उपसंहार**

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं—स्वामी विवेकानन्द ने धर्म और विज्ञान की टकराहट की समस्या को विभिन्न प्रकार से समाप्त करने का प्रयास किया था। उन्होंने यह बताया कि धर्म अन्य किसी भी विज्ञान-विद्या के समान ही वैज्ञानिक है; आधुनिक भौतिक-विज्ञान तथा भौतिकवादी जीवन पद्धति अपूर्ण है; तथा इन दोनों का समन्वय मानव जाति का वृहत्तर कल्याण कर सकता है। उन्होंने एक व्यावहारिक योजना भी बतायी जिसके द्वारा दोनों का सुखद सामंजस्य किया जा सके।

□

प्रत्येक धर्म-साधक एवं अध्यात्म-जिज्ञासु के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक

# पथ और पाथेय

लेखक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम,
जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)
पृष्ठ—२०१
मूल्य—१५ रुपये मात्र (डाक खर्च १० रुपये अलग)

# क्षुरस्य-धारा (२)

—स्वामी त्यागानन्दजी
रामकृष्ण मठ, मद्रास
अनुवादक – ब्रह्मचारी रवीन्द्र
रामकृष्ण मठ, पुणे

[प्रस्तावना: हिमालय की एक गुफा के चारों ओर की अलौकिक सुन्दरता से आकर्षित हो, नारद ने वहाँ अपना आसन जमाया तथा गंभीर एवम् सुदीर्घ समाधि में डूब गये। इन्द्र पूर्ववत् घबड़ाया तथा कामदेव को नारद की तपस्या में बिघ्न उत्पन्न करने हेतु भेज दिया। कामदेव अपने प्रयत्नों में असफल रहा। नारद ने उसे क्षमा की। अपने प्रिय भक्त की रक्षा हेतु सर्वत्र ही इस घटना को श्रीहरि की ही विजय के रूप में मनाया जा रहा था। परन्तु नारद के मस्तिष्क ने अलग ही काम किया। उन्होंने इस घटना को काम और क्रोध पर स्वयं अपनी ही विजय समझा। गर्व से फूले हुए नारद ने अपनी ही महिमा का प्रचार करने हेतु कैलाश की ओर प्रस्थान किया।]

नारद कैलाश की ओर चल पड़े। नारद किस लिए शिवजी से मिलने के लिए इतने आतुर हैं, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। कैलाशपति की महिमा हमारे ग्रन्थों में त्यागीश्रेष्ठ के रूप में वर्णित है। उनका त्याग अनुपम एवं सर्वोच्च है। वे ही काम एवं अन्य वासनाओं के सर्वश्रेष्ठ विजेता हैं। यह सोचनीय है कि नारद – जो स्वयं की दृष्टि में क्यों न हो – सबसे बड़े काम-क्रोधजयी थे, यह जानने के लिए अति उत्सुक हुए कि उनके विजय की कहानी सुनकर शिवजी पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? उनकी यह निश्चित धारणा थी कि वे इनसे ईर्ष्या का भाव रखेंगे एवं यह जानकर उदास हो जाएँगे कि इस क्षेत्र में इनकी सर्वश्रेष्ठता का अब अन्त हो गया।

कैलाश! शिवजी श्रीहरि के साधुभक्त के सुस्वागत में खड़े हो गये। औपचारिकताओं में समय न गँवाते, नारद ने सीधे काम और क्रोध पर अपनी विजय की कथा कहना आरम्भ किया। शिवजी ने सब कुछ धैर्यपूर्वक सुना। जब नारद की आडम्बर-पूर्ण कथा समाप्त हुई, तो शिवजी बोले, अच्छा मित्र, बहुत अच्छा, जो कुछ तुमने मुझसे कहा है वह निश्चय ही उत्कृष्ट है, परन्तु कृपया इसे अन्य किसी से न कहो। विशेषकर श्रीहरि के समक्ष इस विषय में एक शब्द भी उच्चारित न करना। यद्यपि वे इस विषय में तुम्हें आगाह करें तथापि तुम अपना मुख बन्द रखना।

शिवजी का उत्तर इतना सूक्ष्म अर्थबोधक था जिसे समझना नारद को अहंकाराच्छादित बुद्धि के परे था। शिवजी ने जब नारद से अपनी कहानी की पुनरावृत्ति किसी अन्य के समक्ष न करने के लिए कहा तो मानो वे अप्रत्यक्ष रूप से यह कह रहे थे, 'ओ नारद, जब तुम आये तो मैंने सोचा कि चलो अब मुझे पूर्ववत् 'रामकथा' सुनने का सौभाग्य मिलेगा; परन्तु इसके विपरीत तुमने कामदेव से अपनी भिड़न्त को 'कामकथा' सुनाकर मुझे अत्यधिक उबा दिया। तुमने मेरा काफी समय व्यर्थ कर दिया। कोई बात नहीं, परन्तु अब तुम सर्वत्र जाकर पवित्र लोगों का बहुमूल्य समय अपनी अपवित्र कथा सुनाकर व्यर्थ ही नष्ट न करना।' शिवजी भली-भाँति जानते थे कि किसने नारद को बचाया है तथा इसीलिए उन्होंने व्यक्त रूप से उन्हें श्रीहरि के समक्ष अपनी डींग हाँकने का

निषेध किया।

कल्पना करो यदि तुम किसी अंधेरी रात में डाकुओं द्वारा लूटे जाओ एवम् कोई रहस्यमय ढंग से वहाँ उपस्थित होकर इन लोगों को पीटे तथा चुपके से चला जाये। दूसरे ही दिन तुम उसी भले आदमी के पास जाओ तथा डींगे मारो कि कैसे वीरतापूर्वक तुमने उन लुटेरों को आड़े हाथों लिया। इससे मूर्खतापूर्ण भी कुछ हो सकता है भला?

शिवजी नारद से सहानुभूति रखते थे। वे नहीं चाहते थे कि नारद अपनी मूर्खता प्रकट करें इसीलिए उन्होंने नारद को उक्त घटना श्रीहरि से न कहने की सलाह दी।

परन्तु शिवजी की सलाह अनसुनी कर दी गयी। नारद शिवजी के उद्देश्य को पूर्णतया गलत समझ बैठे। जब उन्होंने शिवजी के शब्द सुने, तो वे मन ही मन खूब हँसे। उन्हें लगा कि जो उनकी पूर्व-धारणा थी वह अक्षरशः सत्य निकली। शिवजी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गये हैं। वे डरते हैं कि इसके पश्चात् कोई भी उनकी मूर्त्तिमान पवित्रता एवं अनासक्ति के रूप में स्तुति नहीं करेगा। इसीलिए वे नारद की विजय को गुप्त रखना चाहते हैं जिससे उनकी कीर्ति कायम रहे। परन्तु नारद ने स्वयं सोचा, 'कोई आवश्यकता नहीं! जगत् को सत्य जान ही लेना चाहिए। मैं विश्व में सर्वश्रेष्ठ प्राणी हूँ। मुझे उन लोगों से कोई सहानुभूति नहीं है जो ईर्ष्यालु एवं द्वेषी हैं।'

अब इसमें कोई शंका नहीं रही कि साधारण बुद्धि ने भी नारद का साथ छोड़ दिया था। क्या कभी काम पर शिवजी की विजय एवम् नारद की जीत की कोई तुलना हो सकती है? जब कामदेव को कैलाश पर अनिष्टकारी अभियान पर भेजा गया था, तब उसे दिये गये वृहत् कार्य की महत्ता से वह पूर्णतया अवगत था। इसीलिए सर्वप्रथम उसने सारे जगत् को तप्त काम से व्याप्त कर दिया और तभी कैलाश में प्रवेश किया - उसने शिवजी को गम्भीर समाधि में निमग्न पाया। जैसे ही उसने शिवजी के निष्कलंक एवं पवित्र रूप को देखा, जगत् की काम-दग्धता तुरन्त ही विलुप्त हो गयी। शिवजी की विजय-अनुपात में सारा ब्रह्माण्ड व्याप्त था एवं उसके द्वारा जगत् का कल्याण हुआ। नारद के विषय में जैसा हमने देखा है, उनकी विजय पूर्णतया व्यक्तिगत मामला था। उसके द्वारा जगत् का कुछ कल्याण नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त कामदेव के प्रलोभन से दोनों पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसपर भी जरा गौर करें। शिवजी को ध्यानस्थ देखने मात्र से ही कामदेव की युद्ध--सामग्री नष्टप्राय हो गयी। जो कुछ बच रहा, सिर्फ वह धनुष एवं उसके काम-बाण। जब मदन ने एक पर एक बाण शिवजी के हृदय पर छोड़ा, तो शिवजी अपना धैर्य खो बैठे। उन्होंने नेत्र खोले तो कामदेव को पेड़ के पीछे छिपा देखा। क्रोध से जलते हुए शिवजी ने अपना तृतीय नेत्र खोलकर कामदेव को भस्मीभूत कर दिया। इसके विपरीत नारद विषयक प्रसंग में हमने देखा है कि उन्होंने कामदेव को क्षमा कर अदण्डित ही उसे जाने दिया था। प्रकट तौर पर ऐसा भासता है कि नारद की प्रतिक्रिया शिवजी से अधिक प्रशंसनीय थी क्योंकि शिवजी अपने आपे से बाहर हो गये थे एवं उग्र रूप धारण कर लिया था। नारद ने तत्क्षणात् क्रोध को जीत लिया था एवं क्षमादान देकर अपने हृदय की विशालता ही दर्शायी थी।

परन्तु आइए, हम कुछ गहराई में जाएँ एवं देखें कि किसने अच्छा आचरण किया था। अध्यात्मिक जीवन सत्य एवम् शाश्वत मुक्ति का अनुसंधान है। हम तब तक मुक्त नहीं हो सकते, जब तक हमें जकड़कर रखने वाले बन्धन छिन्न-भिन्न नहीं कर दिये जाते। हमारे शास्त्र विभिन्न प्रकार के बंधनों का उल्लेख करते हैं जैसे द्वेष, लज्जा, दया, शंका घृणा, अभिमान, काम, क्रोध, लोभआसक्ति एवं ईर्ष्या। हमारे समय में, श्रीरामकृष्णने मुमुक्षु साधक के लिए इन सभी को मिलाकर इन्हें काम एवं कांचनासक्ति

इन दो मुख्य शत्रुओं की ओर उचित ही इंगित किया है। वस्तुतः अन्य सभी बन्धन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं दोनों की उपज हैं। श्रीरामकृष्ण इन दोनों के विषय में कभी-भी कोई समझौता नहीं करते थे। हमारे लिए निश्चय ही यह स्मरणीय है कि श्रीरामकृष्ण ने सर्वत्र अपने उपदेशों में इन्हीं काम एवं कांचन का सर्वथा निषेध किया है। यह भी स्मरण रखा जा सकता है कि उन्होंने भी क्षमाशील न होकर निर्ममतापूर्वक काम एवं कांचनासक्ति को जलाकर राख कर दिया था तथा हमारे नायक नारद के सदृश उन्हें जीवित नहीं रख छोड़ा था।

इसमें निहित गूढ़ार्थ सम्भवतः स्पष्ट ही है। जब किसी मुमुक्षु साधक की इन रिपुओं के साथ भिड़न्त हो, तो क्या वह इन्हें क्षमा कर दे या सीधे दण्डित करे? नारद का ही प्रसंग लें। उन्होंने कामदेव को क्षमा किया एवम् उन्हें लगा कि उनसे कोई असाधारण कार्य हुआ है। उन्होंने कल्पना कर ली कि न केवल उनके द्वारा काम जीत लिया गया है, बल्कि क्रोध भी। जैसे-जैसे यह कहानी अग्रसर होती है, नारद को हम काम एवम् क्रोध के वशीभूत होते देखते हैं। इसके अलावा कामदेव को छोड़ देने में नारद का क्या स्पष्टीकरण है? क्या नारद से उसने वायदा किया था कि भविष्य में वह उन्हें कभी कष्ट नहीं पहुँचाएगा? वस्तुतः नारद को शीघ्र ही उसी कामदेव-जनित काम-क्रोध से कष्टपूर्वक ग्रस्त होना पड़ा, जिसे उन्होंने बहुत उदार-हृदय हो चले जाने दिया था। जब किसी आध्यात्मिक पिपासु से क्षमाशील, सहिष्णु एवं दयावान होने के लिए कहा जाए, तो उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह इन सद्गुणों का प्रयोग आध्यात्मिक जीवन के कामक्रोधादि तथा तद्जनित अन्य रिपुओं के लिए भी करे।

नारद की करुणा गलत दिशा में प्रवृत्त हुई थी। यदि कुछ नजदीक से अवलोकन किया जाए तो यथार्थतः वह दया ही नहीं थी। उनकी वह अप्रकट इच्छा ही थी जिससे सारे जगत में वे सर्वोच्च दयावान एवम् क्षमावान व्यक्ति के रूप में विख्यात हो जाएँ एक ऐसा जिसने पूर्णतया क्रोध पर विजय पा ली है यह व्यक्तिगत आकांक्षा ही थी जिसे नारद के अहंकार का आधार था एवम् जो समय व्यतीत होने के साथ ही साथ दिन दुनी रात चौगुनी तीव्रता ले रही थी। नारद ने शिवजी से विदा ली एवं वैकुण्ठ की ओर प्रस्थान किया। अति ईर्ष्यालु शिवजी ने उन्हें श्रीहरि से उनकी (नारद की) विजय का रहस्योद्घाटन करने से मना जो किया था न? ठीक है, नारद ने सोचा कि वे वैसा ही करेंगे। एक कहावत है—आपात काल में मति मारी जाती है। (विनाशकाले विपरीत बुद्धिः)। कुछ ऐसा ही समय नारद के जीवन में उपस्थित हुआ था। अब नारद भक्ति की उन विलक्षण ऊँचाइयों से शीघ्रतापूर्वक फिसल रहे थे जिनपर वे सहज में ही रहने के अभ्यस्त थे। परन्तु विडम्बना यह कि जितना ही वे नीचे फिसलते जा रहे थे, उतना ही उन्हें अपनी उच्चता का भास हो रहा था, अन्ततः उन्हें ऐसा लगा कि उनके जैसा अन्य कोई भी नहीं है, श्रीहरि भी नहीं। वैकुण्ठपति के पास जाते ही उन्होंने इस तरह का निष्कर्ष निकाला क्योंकि वहाँ उन्होंने देखा, कि श्रीहरि नाना वस्त्रालंकारों से विभूषित आराम से नागशय्या पर लेटे थे एवं श्रीलक्ष्मीजी उनके पाँव दबा रही थीं। जब अहंकार का अधिजन्य हो जाता है तब जटिलताएँ कुकुरमुत्तों के सदृश फैलने लग जाती है। नारद तो अब विश्व—ब्रह्माण्ड के ऊपर चढ़े हुए थे। सभी उन्हें निम्न अतिक्षुद्रतर लग रहे थे, श्रीहरि भी कोई अपवाद नहीं थे।

नारद को श्रीहरि द्वारा धारण की गई वेश-भूषा एवं वस्त्रालंकारों में केवल विलासिता गर्व एवं खोखलापन ही नजर आया। नागशय्या पर प्रभु की लेटी हुई मुद्रा को देखकर नारद ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह उनके आलस्य एवं निष्क्रियता का प्रतीक है। सर्वोपरि, नारद को यह देखकर

शंका भी हुई कि श्रीहरि काम से भी सर्वथा मुक्त नहीं हैं क्योंकि अन्यतम सुन्दरी भार्या श्रीलक्ष्मीजी सदा उनकी सेवा में प्रस्तुत जो रहती हैं !

अहंकार भयंकर रूप से अंधा होता है। यह सत्य नारद की दृष्टि से ओट ही हो गया कि उनके सम्मुख वे ही प्रभु हैं जिनका वे ध्यान करते थे जिनका पवित्र नाम वे अनवरत गाते रहते थे, एवं जिनकी अनन्त करुणा ने सदा-सर्वदा उनकी रक्षा की है। तुम्हारे कमरे में सर्प की उपस्थिति के विचार मात्र से ही तुम तुरन्त भाग खड़े होगे। और यहाँ श्रीहरि सहस्र-फणों वाले शक्तिशाली शेषनाग पर शान्त स्थिर भाव से लेटे हैं। अनन्त नामक नाग को हमारे शास्त्रों में काल का सूचक बताया गया है। श्रीप्रभु का उसपर सोना उनकी सर्वातीत अवस्था का परिचायक है, समय या काल के सभी बन्धनों के परे।

जब श्रीलक्ष्मीजी क्षीरसागर से प्रकट हुई थीं, तब उन्हें हड़पने को यथार्थतः होड़ ही लग गयी थी। उन्होंने देखा कि देव एवम् दानव जो समुद्र-मन्थन कर रहे थे, सब में पाप एवम् पुण्य विद्यमान था। एकमात्र श्रीहरि में केवल पुण्य ही थे, पाप का सर्वथा अभाव था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने— वहाँ उपस्थित सभी लोगों में वासनाग्नि प्रज्वलित थी। पुनश्च श्रीहरि ही एकमात्र अपवाद थे, जो वासनाओं से पूर्णतया मुक्त थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि श्रीलक्ष्मीजी ने श्रीहरि के प्रति समर्पण किया। नारद यह सब जानते थे। परन्तु अहंकार, जैसा कि हम कह चुके हैं, अंधापन उसका स्वभाव ही होता है। वह तुम्हारी विचार पद्धति को विकृत कर देता है। इसीलिए नारद ने ऐसा अतिदुर्भाग्यपूर्ण निष्कर्ष निकाल लिया।

प्रभु नारद के स्वागत में उठ खड़े हुए एवं नम्रतापूर्वक बोले, "आदरणीय देवर्षि काफी दिनों पश्चात् यहाँ आ रहे हैं।" सामान्य परिस्थिति में श्रीहरि को इस तरह औपचारिक ढंग से बातें करते सुन नारद को आश्चर्य हुआ होता। कारण यह कि उन दोनों के बीच बड़ा ही अनौपचारिक सम्बन्ध था एवं श्रीहरि नारद से अपने पुत्र के सदृश स्नेह करते थे। परन्तु उनका यह 'पुत्र' इतना सिर चढ़ा हो गया था कि उसे यह अन्तर लक्षित नहीं हुआ। उन्होंने बहुत खामोशी से यह समझ लिया कि यह उचित ही है कि श्रीहरि उनसे आदरपूर्वक बात करें। इसके सिवा, नारद को निश्चय ही यह भी लगा हो कि उनके जैसे महत्त्वपूर्ण एवं महान् व्यक्ति के लिए पुनः पुनः वहाँ जाकर अपनी प्रतिष्ठा को कम करना शोभा नहीं देता। वैसे पहले वे बिना चूके हर रोज वैकुण्ठ जाते ही थे, परन्तु अबकी बार काफी अरसे बाद वे भेंट कर रहे थे। 'येन केन प्रकारेण' नारद ने इस सुअवसर का उपयोग श्रीहरि को यह बताने में किया कि क्यों वे इतने विलम्ब से पधारे एवम् किस बात ने उन्हें श्रीहरि से दूर रखा ?

अपनी काम-क्रोध जय की कहानी का वर्णन करने के पश्चात् नारद ने श्रीहरि की ओर इस अपेक्षा से देखा, बेशक यह कल्पना करते हुए कि शिव के सदृश श्रीहरि भी उनसे ईर्ष्या करने लगे हों।

श्रीहरि का मुखमण्डल कठोर हो उठा जब वे बोले,— हे नारद, केवल तुम्हारे दर्शन-मात्र से लोग कामादि हृदय विकारों से मुक्त हो जाते हैं, तो क्या आश्चर्य है यदि तुम स्वयं इन दोषों से मुक्त हो!' नारद को अपनी उच्चता का बोध हुआ एवं कहा— 'प्रभु, यह सब आपकी ही अनुकम्पा का फल है। श्रीहरि इतने प्रशंसापूर्वक अभिवादन कर रहे हैं तथा नारद ने भी सोचा कि उन्हें भी प्रसंगवश उपयुक्त उद्गार प्रकट करने ही चाहिए। उन्होंने औपचारिकतापूर्वक अपनी सफलता का कारण श्रीहरि की कृपा को ही बताया परन्तु आन्तरिक रूप से वे पूर्ण विश्वस्त थे कि यह सफलता उनकी व्यक्तिगत उपलब्धि ही है।

इस व्यावहारिक तथ्य से अधिकांशतः हम सभी भली-भांति परिचित हैं। हम देखते हैं कि लोग 'ईश्वर, की कृपा से' 'जगज्जननी की दया से, गुरु-कृपा के कारण' इत्यादि उक्तियों का उपयोग इतनी सहजता से करते हैं कि किसी को आश्चर्य हो सकता है कि आजकल कृपा क्या इतनी सस्ती वस्तु हो गयी है ? सत्य यह है कि अनावश्यक एवं अधिक प्रयोग की वजह से शब्दों ने अपनी पवित्रता एवं यथार्थता खो दी है। जब हर ओर सुख-शान्ति का साम्राज्य हो एवं तुम जीवन-नौका आसानी से बह चली हो तब प्रभु की कृपा के विषय में बड़बड़ाना अतिसहज है। परन्तु कितने यह सोचने की परवाह भी करते हैं कि दुर्दिनों में भी, जब जीवन-समुद्र में उफान एवं तूफान उठते हैं, तब भी वही ईश्वर कृपा अलग ढंग से कार्य करती है। नारद का कथन –'प्रभु, यह सब आपकी कृपा से सम्भव हुआ है' सिर्फ उनके होठों से निकला, हृदय से कदापि नहीं।

यदि नारद ने श्रीहरि के चेहरे की ओर देखने की परवाह की होती एवम् उनकी कठोरता की ओर जरा गौर किया होता तो सम्भवतः वे श्रीहरि द्वारा उनका इस तरह से अभिनन्दन करने का आशय समझ गये होते। परन्तु अहंकार की अपनी यह विशिष्टता होती है कि वह अन्धा होता है एवं उसी बात को स्वीकार करता है जो उसके लिए सुविधा-जनक हो। इसीलिए श्रीहरि का वह कठोर रूप नारद को दृष्टिगोचर नहीं हुआ एवं वे अपनी प्रशंसा को सहज ही में निगल गये। स्तुति एवं आत्मप्रशंसा की तृष्णा एक विशिष्ट प्रकार की तृष्णा होती है। शारीरिक तृष्णा, भोग करने पर तृप्त हो जाती है। उदाहरण—जैसे जैसे तुम खाते जाओगे, भूख कम होती जाएगी। दूसरी ओर, नाम, यश, प्रशंसा आदि की तृष्णा क्रमशः बढ़ती जाती है जितना ही लोग अपनी उपलब्धियों द्वारा प्रशंसित होते हैं। नारद इसी अपरिसीम तृष्णा द्वारा अभिभूत हो गये एवं इसी वजह से लोभपूर्वक श्रीहरि का अभिनन्दन आसानी से गले उतार गये। श्रीप्रभु के शब्दों में एक सूक्ष्म कटाक्ष निहित था जो दुर्भाग्यवश नारद की समझ के परे था। जब नारद प्रभु के पास गये थे एवं उन्हें श्रीलक्ष्मी द्वारा सेवित नागशय्या पर लेटे देखा तो नाना प्रकार की दुष्कल्पनाएँ करने लगे थे। श्रीहरि ने अपने अभिनन्दन में मानो नारद से यह कहा—'ओ नारद, जब तुम आये तो तुम्हारे दर्शन मात्र से मैं भी उन सभी कमजोरियों से मुक्त हो गया जिन्हें तुमने मुझमें देखीं।'

अन्ततः अपनी अद्वितीयता पर पूर्ण आश्वस्त होकर नारद ने बैकुण्ठ से प्रस्थान किया। प्रभु अपने प्रिय पुत्र की अवस्था देख दुःखी हुए। काम एवं क्रोध को गीता साधक के लिए दुर्दमनीय शत्रु कहती है।

**काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।**
**महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥**
(३-३७)

प्रभु ने देखा कि नारद इन रिपुओं द्वारा बंधन-ग्रस्त हैं। बन्धन में पड़ जाना बुरा है, परन्तु बन्धन में पड़कर भी इस सत्य से अनभिज्ञ रहना बदतर है। ऐसी ही नारद की अवस्था थी। अहंकार, काम एवं क्रोध ने आपादमस्तक उन्हें जकड़ लिया था, परन्तु वे इससे पूर्णतया अनभिज्ञ थे। बाह्यतः वे अन्य सभी की एवं स्वयं की दृष्टि में उचित मार्ग पर अग्रसर हुए प्रतीत होते हैं। परन्तु अधिकांश लोग तब तक ही भले प्रतीत होते हैं जब तक बुरा करने के अवसर उपस्थित नहीं होते। ऐसे ही अवसरों पर तुम्हारी आन्तरिक दृढ़ता की परीक्षा होती है। तुम्हारी सत्यवादिता तब तक सद्गुण नहीं बनती जब तक तुम सत्यनिष्ठ रह सको ऐसे अवसर उपस्थित होने पर भी कि यद्यपि तुम स्वार्थ लाभ हेतु असत्य बोल सको एवं जिसके उजागर होने का भय भी न हो। तुम्हारी पवित्रता तभी साधुता में परिणत होगी जब उन बाह्य आकर्षणों के उपस्थित होने पर भी तुम

पवित्र बने रहो जबकि अन्य लोग सामान्यतः अपनी पवित्रता कायम नहीं रख पाते।

क्रोध पर तुम्हारा नियन्त्रण तभी स्थिर माना जाएगा जब तुम उन परिस्थितियों में भी क्रोधित (आन्तरिक रूप से भी नहीं) न होओ जबकि साधारणत. ऐसे समय वह उचित भी लगे। नारद ने उपयुक्त परीक्षाएँ उत्तीर्ण नहीं की थीं। उन्होंने क्षणिक सफलता को स्थायी विजय समझने की भूल की थी। प्रभु इस समस्या से अवगत थे। उन्होंने नारद को सही मार्ग पर लाने हेतु कुछ करने का निश्चय किया। तुम यह जानने के उत्सुक हो सकते हो कि प्रभु ने स्पष्टतया नारद से यह क्यों न कह दिया कि वह सत्यपथ से दूर जा रहे हैं एव तत्क्षण उन्हें दुरुस्त कर दिया!... इसके विपरीत, उन्होंने किसलिए उनका अभिनन्दन किया जिससे उनका अहंकार और भी बढ़ गया एवं फलस्वरूप आत्मिक कमजोरी में भी वृद्धि हुई।

इसका उत्तर यह है कि प्रभु अपने भक्तों के व्यक्तिगत जीवन में सहसा हस्तक्षेप नहीं करते जब तक कि ऐसा करना अत्यावश्यक प्रतीत न हो। यदि श्रीहरि चाहते तो आसानी से नारद के उफनते हुए अहंकार को तभी रोक देते जब कामदेव से उनकी भिड़न्त हुई थी। यदि प्रभु की इच्छा हो तो आज बोया हुआ बीज कल ही विशाल एवं विराट वृक्ष के रूप में परिणत हो सकता है। परन्तु वे वैसा करते नहीं। वे वृक्ष को वृद्धि के प्राकृतिक नियमानुसार बढ़ने का अवसर प्रदान करते हैं। उसी तरह, वे हर एक को अपने प्रयत्नानुसार प्रगति पथ पर अग्रसर होने एवं अपने कर्मों के फल भोगने की छूट प्रदान करते हैं। जब ईश्वरीय मदद अतिवांछनीय हो जाए केवल तभी प्रभु अग्रसर होते हैं। ऐसा ही अवसर नारद के जीवन में आ उपस्थित हुआ है। ऐसा भी नहीं हुआ कि अन्य किसी ने नारद को सावधान नहीं किया था। जैसा कि हमने देखा है, शिवजी ने उन्हें उनके हृदय-दौर्बल्य की स्पष्ट सूचना देकर उनकी सहायता करनी चाही थी, परन्तु अहंकार ने शिवजी की मृदु सलाह को नारद की सोचने-समझने की शक्ति तक पहुँचने का मार्ग ही अवरुद्ध कर रखा था। अब प्रभु ने इस मामले को अपने हाथ में ले लिया।

श्रीहरि ने कैसे आध्यात्मिक अवनति की घोर गहराइयों में पतित हुए नारद की रक्षा की? उन्हें बचाने हेतु प्रभु ने जिन उपायों का आश्रय लिया, वे इस सुरुचिपूर्ण कहानी में बड़े रोचक प्रसंग हैं एवं आध्यात्मिक जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को हमारे समक्ष उजागर करते हैं। यह अगले माह हमारी विवेचना का विषय होगा।

(क्रमशः)

---

जो प्राणी जितना ही निम्नस्तर का होगा, उसे इन्द्रियजनित सुखों में उतना ही आनन्द मिलेगा। बहुत कम मनुष्य ऐसे मिलेंगे जिन्हें भोजन करते समय वैसा ही उल्लास होता है, जैसा किसी कुत्ते या भेड़िये को। किन्तु याद रहे कि कुत्ते और भेड़िये के सारे सुख इन्द्रियों तक ही सीमित हैं। निम्न कोटि के मनुष्यों को इन्द्रियजनित सुखों में ही आनन्द मिलता है। किन्तु जो लोग संस्कृत एवं सुशिक्षित हैं, उन्हें चिन्तन, दर्शन, कला और विज्ञान में आनन्द मिलता है। आध्यात्मिकता उससे भी उच्चतर स्तर की है।

—स्वामी विवेकानन्द (धर्म तत्व पृ० १४)

# रस के बस में चार रात

फणीश्वरनाथ रेणु

( हिन्दी के सुविख्यात् कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित होने के पूर्व 'रेणु' के जीवन में एक रात एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई थी, जिसने उनके जीवन का रूपान्तरण कर दिया, नास्तिक से आस्तिक बना दिया। उस रात जब वे क्षय रोग की चरम अवस्था में अस्पताल की शय्या पर पड़े अपने जीवन की अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे, उन्हें युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण का दर्शन मिला, बातचीत भी हुई। इसके बाद से वे धीरे-धीरे आध्यात्मिक पथ पर खिचते गये और अन्ततः रामकृष्णमय हो उठे थे। प्रस्तुत लेख में उक्त घटना का विवरण आया है। रेणुजी की यह संस्मरणात्मक रचना 'अणिमा' पत्रिका के प्रवेशांक (जनवरी १९६५ ई०) में प्रकाशित होकर तत्पश्चात् श्री भारत यायावर द्वारा 'श्रुत अश्रुत पूर्व' नामक पुस्तक में संकलित हुई है।—स )

२४ दिसम्बर' ६४—रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में आयोजित क्रिसमस इव' से लौट रहा हूँ। मन प्राण स्वर्गीय सुगन्ध में डूबा हुआ है। जीभ पर प्रसाद (केक) की गुलाबी-मिठास ! किन्तु, ओवर-कोट इतना भारी है कि लगता है कन्धे पर सलीब ढो रहा हूँ। एक कुहरा-भरी साँझ में अभी जो कुछ देखता हूँ, उस पर एक 'क्राम' की छाया उभर आती है : सड़क, रोशनी, रिक्शा, आदमी, क्रास+क्राम+आश्रम से निकलकर दाहिनी ओर मुड़ रहे थे पैर—बिधर जाते-जाते गाँधी-मैदान के पास जाकर मैं एक 'जहन्नुम' में चला जाता। मन मना कर रहा था, मगर पैर मुड़ रहे थे। हठात्, कर्कश हार्न सुनकर वाम दिशा के फुटपाथ पर चढ़ गया। देखा, एम्बुलेन्स बाय-पास होकर छुतहा अस्पताल जा रहा है। कुहरे में भी, दूर तक, सुफेद मोटर-वान पर अंकित रेड-क्रास दिखलायी पड़ता है। फिर कुहासे के झीने पर्दे पर—कम्पलिमेण्टरी-कलर में क्रास+क्रास+क्रास ! बायीं ओर चलता हुआ घर आया।

मेरी सूरत देखकर ही घर के लोग समझ जाते हैं, मैं आज जहन्नुम से नहीं, जन्नत से आ रहा हूँ।

संयोग की बात बिजली गयी ! हमने आध-दर्जन मोमबत्तियों को जलाकर उजाला किया। घर का हर प्राणी, नौमो—सुनहरी, झबरी हमारी नौमी ! और तोतू (हरबोला पंछी !) भी, अचानक ईश्वरोन्मुख हो गया। सभी के चेहरों पर एक दिव्यभाव ! काँपते हुए हम भोजन करने बैठे। लगता है, कहीं पास ही कोई मद्धिम आवाज में गद्गद कण्ठ से पढ़ रहा है—'भोजन करते समय येसु ने रोटी ली और उसे आशीष देकर तोड़ा और अपने शिष्यों को देते हुए कहा—लो और खाओ, यह मेरा शरीर है।·· तब कटोरा लेकर धन्यवाद दिया और यह कहते हुए उन्हें दिया इसमें से सब-के-सब पी लो, क्योंकि यह मेरा लहू है, व्यवस्थान का लहू जो बहुतों के लिए बहाया जा रहा है, कि उन्हें पापों की क्षमा मिले।····· मैं ही रोटी हूँ, जीवित रोटी जो स्वर्ग से उतरी है ····जो संसार के जीवन के लिए

समर्पित है। ...

यदि उस समय एम्बुलेन्स का हॉर्न मुझे बायें फुटपाथ पर नहीं कर देता, बहुत दूर तक रेडक्रास नहीं जगमगाता रहता, तो मैं दाहिनी ओर मुड़ रहा था।

जन्नत से लौटकर जिस साँझ आता हूँ उस रात को नींद नहीं आती है। इसी के डर से मैं वहाँ हर साँझ नहीं जाता। महीनों नहीं जाता। हर साँझ को मौत खरीदने निकल जाता हूँ—जहन्नुम की ओर !

कल, २५ दिसम्बर को बड़ा दिन है, 'श्री श्री माँ' परमा प्रकृति सारदामणि का दिन है। सुबह साढ़े आठ बजे से विशेष-पूजा और हवन रात में 'श्री श्री माँ फिल्म-शो'— सूचना देने के लहजे में, मैं बोला कल, 'श्री श्री माँ।' परसों—'वीरेश्वर विवेकानन्द' और 'मीराबाई।' २७ दिसम्बर को 'परमहंस रामकृष्ण'—

हमारे सोने के कमरे का एक कोना—'मिनि-एचर मन्दिर' है। एक छोटी-सी चौकी पर रंगीन चदरी बिछी हुई है। उस पर गणेश, शिव, बुद्ध, सरस्वती, ईसा और रामकृष्ण की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं—दीवार के सहारे दशभुजा-दुर्गा की रंगीन तस्वीर (पट !) टिकी हुई है और राम-कृष्ण-सह महाकाली की छवि ! मेरे गुरु स्वामी माधवानन्द का फोटोग्राफ। दाहिनी दीवार पर ध्यानरत विवेकानन्द। और इन सभी के ऊपर हैं—श्री श्री माँ !

चौकी के पास फर्श पर धूपदानी है और और सोलन की बोतल में गंगाजल....। बोतल का लेबल ज्यों-का-त्यों चिपका हुआ है।

बस एक बार, बंगदेश की एक इण्टेलेक्चुअल महिला ने पूछा था 'सबसे ऊपर श्री माँ को रखने का कोई खास मतलब है क्या ?'

जो सही बात थी निवेदन किया—मूर्तियों और तस्वीरों को सजाने-बैठाने लटकाने के समय कोई खास मतलब नहीं था। जगह, आकार और आयतन के हिसाब से, सहूलियत जैसा हुआ.. मगर, अब एक मतलब निकाल लिया है। विवेकानन्द अमेरिका से अपने गुरुभाई शिवानन्द को लिखते हैं, 'जीती-जागती दुर्गा की पूजा दिखा-लाऊँगा। भाई, माँ की याद आते ही कभी-कभी कहता हूँ—को रामः ? (अशोकवाटिका में सीता को देखकर, हनुमान भूल गये थे राम को को रामः ?) रामकृष्ण परमहंस ईश्वर थे या आदमी—जो भी कहो—किन्तु, जिसकी माँ पर भक्ति नहीं—उसको धिक्कार।'

फिर रामकृष्ण-सारदा कथोपकथन का एक टुकड़ा।

रामकृष्ण की पदसेवा करती हुई सारदा एक दिन हठात् पूछ बैठती है, "मैं तुम्हारी कौन लगती हूँ ?"

"तुम ? मेरी आनन्दमयी हो ! जो माँ मन्दिर में हैं अर्थात्—भवतारिणी काली) वही नहबत-घर में (रामकृष्ण की माँ चन्द्रमणि) हैं और वही यहाँ अभी मेरा पैर टीप रही हैं।"

भद्र महिला को स्मरण दिलाया था 'और, स्वयं रामकृष्ण ने जिनकी पूजा की थी। षोड़सी-पूजा ! चरणों पर भक्ति-श्रद्धापूर्ण प्रणाम निवेदन किया था ।'

तब उन्होंने मुस्कराकर पूछा था "और, इस बोतल में क्या है ?"

मैंने तनिक हकलाकर कहा था, "वह मैं हूँ।"... अर्थात्, वह मेरा प्रतीक है।... यानी सोलन की बोतल में गंगाजल।

बोली, "आपके अहंकार की तारीफ ।"

मैं बोला, "दासोऽहं। सोऽहं नहीं। रामकृष्ण की सीख !" ... वह झुँझलाकर हँसी थी। मन-ही-मन बोली थी—'भण्ड !'

सचमुच, मैं 'भण्ड' ही हूँ क्या ? बगुला-भगत ? सम्भव है, होऊँ। मगर, अभी इस समय आधी रात को जब गांधी-मैदान के पासवाले गिर्जाघर में घड़ीघण्ट घनघना उठा है मैं भण्ड नहीं। मैं हड़बड़ाकर, कुर्सी छोड़ कर उठता हूँ। और दीवार के सहारे खड़ा होकर दोनों हाथों को दोनों ओर फैला देता हूँ ! और, तब देवदूत कहता है 'डरो नहीं—सुनो, मैं तुम लोगों के लिए बड़ी खुशखबरी ले आया हूँ, जिससे सारी जनता को आनन्द होगा। आज दाऊद को इसी नगरी में तुम्हारे लिए मुक्ति-दाता जन्में हैं।"

मैं हूँ सत्य, मैं हूँ मार्ग, मैं हूँ जीवन !--प्रभु ईसा कहते हैं।

पूजा और हवन में, समय पर नहीं पहुँच पाने के कारण, नहीं सम्मिलित हो सका। किन्तु, प्रसाद-वितरण के बहुत पहले ही आश्रम पहुँच गया था भंगी-टोली के सैकडों प्रसादार्थियों की भीड़ में खड़ा होकर इस बार माँ का प्रसाद लूँगा। खिचड़ी-प्रसाद। खेचरान्न ! रामकृष्ण तथा माँ को खिचड़ी बहुत प्रिय थी। इसलिए, इनकी पूजा में, भोग खिचड़ी का ही निवेदित होता है।

मैंने, पिछले कई वर्षों में एक बात की परीक्षा ले ली है। कई अभक्त (अर्थात् जो रामकृष्ण के भक्त नहीं, नास्तिक हैं, द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी हैं !) जनों को यह प्रसाद खिलाकर पूछा—ऐसी खिचड़ी पहले भी आपने कभी खायी थी ?' और, भोजन-रसिक मेरे मित्रों ने निस्संकोच जवाब दिया है—'कभी नहीं। इतनी सुस्वाद खिचड़ी ?'

अथच, मूँग की दाल और चावल, आलू के अलावा इसमें न घी होता है और न कोई सुगन्धित मसाला !

खिचड़ी खाकर अघाये हुए नंग-धड़ंग बच्चों में एक अजीब उत्साह है। रात में सिनेमा होगा। एक रात ही नहीं। तीन-तीन रात !

बन्द,अँधेरे हाल में बैठकर आनन्द लूटने को, कोई आत्म-रति कहे तो, उसे मैं पागल नहीं कहूँगा। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, जात्रा देखनेवाली जनता को भी देखा है और अन्ध-बन्द-हाल के दर्शकों की सिलहुट छवि भी। लालटेन, गैसबत्ती, पंचलाइट डे-लाइट, किरोसिन-लाइट पैट्रोमेक्स की रोशनियों में हर मुखड़े पर अंकित हँसी-रुदन, आनन्द-अवसाद की रेखाएँ, स्पष्ट हो जाती हैं। किन्तु, फिल्मयुग में अब नाटक भी अँधेरे में होता है: अन्धकार में टटोलती हुई हँसी .. लड़खड़ाती हुई मुस्कुराहट, गुपचुप, फिसफिस !

लेकिन, खुले मैदान में जब-जब फिल्म देखी है, एक अद्भुत आनन्द मिला है ! पर्दे पर तस्वीरें अस्पष्ट उभरती हैं, आवाज झनझनायी हुई निकलती है, फीता बार-बार कट जाता है, इसके बावजूद— सुख मिलता है।

एक हजार दर्शकों में से सात सौ को छांट देता हूँ- वे सिर्फ बायस्कोप देखने आये हैं। तीन सौ में, दो सौ को अभक्त की श्रेणी में डालकर—एक सौ दर्शकों को मैं रामकृष्ण का भक्त मान लेता हूँ।

रामकृष्ण मिशन के इस मैदान में, साल-भर में कई बार भारी भीड़ होती है। उस समय, आश्रम के विद्यार्थी जूतों की रखवाली से ट्राफिक कण्ट्रोल तक करते हैं। आश्रम के बड़े महाराज, समय-समय पर, शोर-गुल करनेवालों को शान्त करते हैं। किन्तु, आज की भीड़ को कोई नहीं सँभाल रहा। लोग, जूते पहनकर ठाकुर-मण्डप में खड़े हैं। उन्हें कोई कुछ नहीं कहता। कुछ कहना बेकार है। कोलाहल कलरव आनन्दोलास !

आज की रात—'श्री श्री माँ' में रामकृष्ण की भूमिका में श्री गुरुदास बन्दोपाध्याय हैं। सुना है रामकृष्ण की भूमिका करते समय—शूटिंग के दिनों—आप रामकृष्ण रस में विभोर रहते हैं।

सबकुछ 'ऐबनारमल' हो जाता है ! पर्दे पर रोशनी उतरी और भीड़ धीरे-धीरे संयत हो रही है। स्वयं चारों ओर खामोशी छाती गयी। खेल शुरू होने के पहले ट्रेलर, डाक्यूमेण्टरी दिखायी जा रही है सिक्कि सेन्स एक व्यक्ति है जो सार्वजनिक स्थलों पर, बसों में ट्रेन में, ट्राम में पब्लिक टेलिफोन पर, लिफ्ट पर, मुहल्ले के नल पर, घर में-- हर जगह अपनी हरकतों से अनेकानेक हास्यास्पद-स्थितियाँ पैदा कर जाता है हहहह ! हहहह !

नहीं, भीड़ ने मूल बात को ग्रहण कर लिया है। एक तेरह साल का स्कूलिया-लड़का अपने साथी से कह रहा है 'अभये न देखले लवाऊ पर्दा पर।'

···श्री श्री माँ ! इसके अलावा मैं कुछ भी नहीं पढ़ सका। शायद पढ़ना ही नहीं चाहता था—क्योंकि मैंने चेष्टा नहीं की। सिनेमा-हाल में भी यही करता। एक अन्धभक्त की दृष्टि से मैं यह 'लीला' देखने आया हूँ। मैं पटलदास हूँ ! मैं माँ सारदामणि को सीता कहता हूँ, मानता हूँ।

···अद्भुत भाव विभोर होकर सभी ने काम किया है। एक रील समाप्त होने के बाद विराम के क्षण में मुझे लगा मैं उन्नीसवीं शताब्दी में पहुँच गया हूँ। मैं इस युग का आदमी नहीं ··मैं लाटू महाराज हूँ, जो परम-आह्लाद से माँ की रोटी बेलने को ही असल पूजा मानता है !

···रामकृष्ण की आँखों को, विभिन्न अवस्था और 'भाव' के क्षणों में देखकर – देखते-देखते मैं चंचल हो उठा। लगा, ओवरकोट के नीचे स्वेटर के नीचे कोई पतंगा घुस गया है। नहीं, मैं डर गया हूँ असल में।

मुझे बार-बार ऐसा लगता है कि मैं जोर-जोर से रोने लगूँगा चिल्लाने लगूँगा—हँसूगा। हालाँकि, मैंने आज किसी किस्म का नशा नहीं सेवन किया है, मगर लोग कहेंगे -'साला ! यहाँ भी आया है पी के।' अथवा कहेंगे –'साला गिरीश घोष की नकल कर रहा है।'

जब माँ सारदामणि, पगली वैष्णवी को प्यार से पुचकारकर शान्त करने लगी—मैं डगमगाता हुआ उठ खड़ा हुआ। फिर, उस भीड़ से कैसे बाहर निकला—स्मरण नहीं। बड़े महाराज ने पूछा – 'क्यों ? चले ?' जवाब दिया – 'नहीं। जरा खड़ा होकर, इस पेड़ के नीचे से देखूँगा। लेकिन पाँच मिनट के बाद मैंने भागकर घर जाने में ही कुशल माना।

घर आकर लगा, इस भारी ओवरकोट के कारण ही मेरी वैसी अवस्था हो गयी थी, शायद। बोझ और गर्मी के मारे 'ब्लड प्रेसर' पर असर .. नहीं, मुझे ब्लड प्रेसर की शिकायत नहीं। फिर भी, एक बार जँचवा लेने में क्या है ?···ब्लड प्रेसर आपरेटस ··· डाक्टर अस्पताल ··· मेरे कमरे के मन्दिर में कोई बोला – 'अरे दुर साला ! निजे के रोगी-रोगी भाबले सत्ति-सत्ति रोगी हये जावे ! किछु नेई !!' ओवरकोट के कारण नहीं—असल में रामकृष्ण के कारण ही मैं 'लीला' से भाग आया।

मुझे बार-बार अस्पताल के उस महान् दिन को याद आती है; उन क्षणों की याद आती है, जब मैंने ठीक इसी तरह इस 'मूरत को भाव-विह्वल होकर बोलते देखा था। उन क्षणों—उस दिन—के पहले तक रामकृष्ण की तस्वीर को देखकर—मेरे मन में कभी भक्ति नहीं उमड़ी। बल्कि, अश्रद्धा ही अधिक होती थी। और, मैं उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था। न कभी जानने की उत्सुकता हुई। यहाँ तक कि विवेकानन्द उन्हीं के शिष्य हैं और विवेकानन्द ने क्या-क्या कहा, क्या-क्या किया—यह सब जाने बगैर मन में विवेकानन्द से बैर ठाने हुए था। मार्क्सवादी की हैसियत से हर मजहबी आदमी को अफीमखोर या गँजेड़ी आदमी मानता था !

१९५१-५२

दो-दो बाल्टी रक्त उगलकर मैं ठण्डा होता जा रहा था। उस दिन हमारे वार्ड में आध दर्जन से अधिक व्यक्ति मर चुके थे। पंखा बन्द था, नल में पानी नहीं। मेरी जीभ पर···गोंद · मेरी सांसों को कोई गोंद से चिपकाकर···फेफड़े का रोगी, अन्तिम क्षणों तक होश में रहता है त्राहि-त्राहि मची हुई वार्ड में ··मुझे रह-रहकर नींद आती है गन्ध दुर्गन्ध भीषण नरक आँखें खुलते ही एक छाया चेहरे पर झुकी हुई—हट गयी छाया! समझ गया—यह उच्चका मेहतर हर वार्ड में मरना-सन्न लावारिस रोगियों' के इर्द-गिर्द मंडराता है। मरा कि टूटा!! वह झुककर परीक्षा कर रहा था—सांस चल रही है या नहीं। मुझे जिन्दा देखकर छिटककर अलग जा खड़ा हुआ। मैंने तकिये के नीचे रखी हुई घड़ी-कलम को टटोलकर देखा। हाथ, शायद तकिये के नीचे ही रहा और मैं फिर सो गया। हालांकि, जगे रहने की अन्तिम दम तक मैंने चेष्टा की।···एक पागल या नशाबाज-दाढ़ीवाला हाथ में गांजे का चिलम लेकर धुआँ उड़ाता हुआ मेरे पास आता है। जोर से धुआँ मेरी ओर फेंककर हँसता है—ठठाकर !...वह मुझसे पूछता है कि तुम रो क्यों रहे हो? और, आश्चर्य—बंगला में ही पूछता है—फिर हँसकर कहता है—'दुर साला! कांदछिस केन ?'—मैं कहता हूँ—'मुझे बहुत काम करना था, लेकिन यह नींद। मैं सोना नहीं चाहता···' दाढ़ीवाला गम्भीर होकर, व्यंग्य भरी मुद्रा में कहता है—'देश का उद्धार तो कर दिया, अब क्या?·· साला देशेर सेवक सेवकेर जालाय लोके वाय-बाय कोर्बे, तोमार तो कलम सोनार'··'हाँ, पार्कर फिफ्टी-वन है न!'—मैं लजाकर कहता हूँ। दाढ़ीवाला बोला—'इस सोने की कलम से क्या-क्या लिखा? कभी मेरा नाम लिखा? दुर साला किच्छुइ जाने ना—हो-हो-हो—दुर साला—तोर किच्छुई नेई—तुमी भालो—तुमी रोगी नओ—तुमी सुस्थ तुमी सुस्थ—उठो।'

आँख खोलकर देखा—वार्ड में सवेरे पर धूप है। लगा, मैं स्वस्थ हो गया। डेढ़ साल से चढ़ा हुआ बुखार आज आधा डिग्री उतरा पहली बार!

डाक्टर हर्ड साहब आये—'क्राइसिस की रात कट गयी!'

और उसी दिन से मेरा बुखार घटता गया, (कुल ९० पाउण्ड) वजन बढ़ता गया क्रमशः। पाँच छै महीने के बाद डाक्टरों ने वजन घटाने की सलाह दी। अस्पताल से 'डिस्चार्ज' होने के दिन डाक्टर साहब कह रहे थे अपने विद्यार्थियों से—'कुछ अद्भुत ढंग से यह आराम हुआ—है न?'

अस्पताल से निकलकर, दूसरे दिन एक किताब की दुकान पर गया। बंगला पुस्तकों में एक 'गेटअप' ने आकर्षित किया। परमपुरुष रामकृष्ण परमहंस। लेखक—अचिंत्य कुमार सेनगुप्त।··· प्रच्छपट परिकल्पना—सत्यजीत राय (उस समय तक फिल्म डायरेक्टर नहीं हुए थे)—और-और—अन्दर फोटोग्राफ देखकर—मैं घबरा गया था। यह तो-तो-तो-तो उस दिन—छै-सात महीने पहिले अस्पताल में उस महान-दिन को—उस रात को—यही मूरत??

'रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य' पढ़ना शुरू किया।···वर्षों के भूखे-प्यासे आदमी को भोजन मिला हो, मानो बार-बार पढ़कर भी तृप्ति नहीं होती। अन्त में, इन ग्रन्थों का 'पाठ' शुरू किया।

रामकृष्ण की छवि के सामने, विधिपूर्वक!·· अपना पहला उपन्यास लिखना शुरू किया। पाण्डुलिपि पर सबसे पहले 'ॐ भगवते श्रीरामकृष्णाय नमः' लिखना चाहता था।·· से कि रे! सोनार कलम दिये बई लिखबे? आमार नाम लिखबे? प्रथमे गणेशेर नाम लिखते हय रे बोका साला!

आमार की सूँड आछे जे आमि गणेश होबो ? जा स्साला. तोर जा मने इच्छे-ताइ लिख ! तब, मैंने 'श्री गणेश' नहीं लिखकर लिखा—सिर गणेश। और तब उपन्यास का सिरगनेश (बिसमिल्लाह !) किया।

आश्रम में 'श्री श्री माँ' देखते वक्त मुझे वह अद्भुत हँसी सुनायी पड़ती थी। लगता था, बस अब मुझसे सवाल करेंगे—'की रे साला ! सोनार कलम दिये की लिखली ?' जो माटी वही सोना, जो सोना वही माटी ! फोरटीन कैरेट सोना—फोरटीन कैरेट माटी !

रामकृष्ण ने कहा था—'माँ, मुझे सूखा संन्यासी मत बनाना।—मुझे रस के बस में रखना।'

यदि, रामकृष्ण रस के बस में नहीं रहते, सूखा संन्यासी हो जाते तो-तो—मैं समझता हूँ—आज बंगाल में न कोई गीत गाता, न नाटक खेलता, न फिल्म बनाता, न चित्र आँकता, न साहित्य सृष्टि करता। मात्र, बारूद का गोदाम ! ! कल, 'विवेकानन्द' और 'मीरा' की लीला देख सकूँगा या नहीं—राम जाने।··· लेकिन आज की रात भी नींद नहीं आयेगी—यह मैं जानता हूँ।

नहीं, आज भी नहीं देख सका पूरा खेल। शिकागो-भाषण स्वामीजी ने शुरू किया और मेरी देह काँपने लगी !

घर लौटकर सिस्टर निवेदता लिखित किताब The Master as I saw him पढ़ता रहा। बीच-बीच में मन में एक सवाल उठता—'सिस्टर निवेदिता भी अन्धभक्त थीं क्या ?'

हाँ, निवेदिता ने भी अपने गुरु की तरह, अपने गुरु को 'ठोक-बजा' कर देख लिया था और फिर 'अन्ध' हो गयी थीं।—रामकृष्ण ने कहा था, नरेन (विवेकानन्द) से—'हाँ, ठोक-बजाकर देख लो। तुम दूसरों की कही-सुनी बातों को, अन्धों की तरह क्यों ग्रहण करोगे ?···

'मन चलो निज निकेतने'—पहली मुलाकात के दिन रामकृष्ण को भजन सुना रहा है—नरेन। रामकृष्ण ने भाव-समाधि ली। देखा, यह तो वही है—मेरा गुरु—वह प्रकाशपुंज—जिसने मुझे यहाँ भेजा तुम चलो मैं आ रहा हूँ। गीत समाप्त हुआ। रामकृष्ण की विह्वल-गद्गद वाणी··· फिर आना। बार-बार आना।··· ओ आमार गुरु ओ नारायण—ओ शिव—ओ अग्नि—नरेन आमार खापखोला (म्यान से निकली) तरवार !

विवेकानन्द, अपने पश्चिमी भक्त-पाठकों को अपने गुरु (मदीय आचार्य देव !) के सम्बन्ध में सुनाते हुए लिखते हैं—"··· इस तरह, मैं क्रमशः नास्तिक होता जा रहा था। ऐसे समय में ही—यह आध्यात्मिक-ज्योतिष्क मेरे भाग्य-गगन में उदित हुआ। उसने मुझे बुलाया—उपदेश सुनने गया। लेकिन, मैंने देखा—यह तो साधारण आदमी की तरह ही है। कोई असाधारणत्व नहीं देखा। वह अति सरल भाषा में बातें करता था—मैंने सोचा, यह आदमी एक बड़ा धर्माचार्य कैसे हो सकता है ?··· मैं जो कुछ कह रहा हूँ—वह कोई मनगढ़न्त या कल्पित-कथा नहीं—यह वास्तविक सत्य है। मैं दिन-प्रतिदिन इस व्यक्ति के निकट आने लगा। सारी बातें तो मैं अभी नहीं बताऊँगा, तब, इतना कह सकता हूँ कि धर्म भी दिया जा सकता है—यह मैंने वास्तविक रूप से प्रत्यक्ष किया। मैंने ऐसा बार-बार होते देखा है—एक 'स्पर्श'—अथवा एक 'दृष्टि' से ही, समग्र जीवन-परिवर्तित !··· मैंने बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और प्राचीन काल के विभिन्न महापुरुषों के बारे में पढ़ा था—उन्होंने उठकर कहा, 'स्वस्थ होओ।' और वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। मैंने अब जाना, यह सत्य है ! मैंने जब इस 'पुरुष' को देखा—मेरा सारा सन्देह बह गया। धर्मदान सम्भव है। मेरे गुरुदेव कहते—'दुनिया की और चीजें जैसे ली-दी जाती हैं—धर्म तदपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष रूप से दिया-लिया जा सकता है···।"

नरेन—एक तूफान ! केशवचन्द्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गिरीश घोष, बंकिमचन्द्र सभी की आँखें इस तूफान पर थीं। आश्चर्य ! उस पागल ने, दक्षिणेश्वर के अपढ़ व्यक्ति ने इस आँधी को मुट्ठी में कैद कर लिया !

—'यह आपने क्या किया ? मुझ पर कौन-सा जादू डाल दिया ? नहीं-नहीं। ऐसा मत कीजिए। मेरी माँ है, भाई है—परिवार है। मेरा सबकुछ क्यों छीन लिया आपने ? मुझे छोड़ दीजिए—दुहाई !'—आर्तनाद कर उठा नरेन। रामकृष्ण 'जै माँ, जै माँ' कहते—हाथों से तालियाँ बजाते हुए कहते हैं—'जा ! जा ना ! कहाँ जायेगा ?' हो-हो-हो-हो ! विचित्र हँसी !!

चारों ओर लहराता समुद्र ! कन्याकुमारी की चट्टान पर खड़ी गैरिक-काया दूर देख रही है। या सूरज को उगा रही है—मन्त्र पढ़कर ? उठो ! जागो !! प्राप्त करो या ।

रोमां रोलां परिचय देते हैं 'उनके शब्द महान संगीत हैं, वीथो-वन-शैलो के टुकड़े हैं हैंडेल के समवेतगान के छन्द प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत स्पर्श के-से आघात की सिहरण का अनुभव किये बिना मैं उनके इन वचनों का स्पर्श नहीं कर सकता, जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। और, जब वे नायक के मुख से ज्वलन्त शब्दों में निकले होंगे तब तो न जाने कसे आघात एवं आवेग पैदा हुए होंगे !'

पिछले साल की बात याद आती है। एक 'भौतिकवादी'—(भारतीय !) प्रकाशक मुझे देखकर ही, मन का क्षोभ उतारने लगे 'साहब हद है ! इस अंतरिक्षयात्रा के युग में विज्ञान, टेक्नोलाजी वगैरह की किताबें नहीं खरीदकर—सरकार ने इस बार सारी खरीदारी—सब पैसे—'विवेकानन्द ग्रन्थावली' के लिए लगा दिये हैं। हद है ! अजब देश है यह !

मैंने कोई जवाब देना उचित नहीं समझा। क्योंकि, एक समय था, जब मैं भी इसी तरह आंग-पेशाब करता फिरता था। जिस दिन मेरा अभिमान चूर्ण हुआ था—देखा, मैंने अनेकानेक 'शिव' को अपवित्र कर दिया है। तब जोर-जोर से रोया था। आँसुओं में नहाकर पापमुक्त हुआ हूँ। अब राह चलते वक्त, हर मील के पत्थर (माइल स्टोन !) के सामने श्रद्धावनत् होकर माथा टेकता हूँ ! किन्तु पिछले साल से अब तक बच्चों के लिए प्रकाशित-जीवनी-पुस्तिकाओं में सबसे अधिक प्रिय-पुस्तिका प्रामाणित हुई—रामकृष्ण-मिशन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'बच्चों के विवेकानन्द !' उस तेज प्रकाशक से यह बात छिपी नहीं होगी। विवेकानन्द-जन्मशती के अवसर पर घटी हुई दूसरी घटना ! आश्रम (पटना) में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में उस दिन 'दिनकर' जी बोलने वाले थे। पटना के प्रायः हर वर्ग के श्रोता उपस्थित थे। संख्या अधिक थी बुद्धिजीवियों की ही। दिनकरजी ने उठकर रामकृष्ण की मूर्ति को नमस्कार किया विवेकानन्द के तैलचित्र की ओर देखा, फिर बोलने लगे। और, जब बोलने लगे तो बोलते-बोलते एक बार रवीन्द्र, गाँधी को विवेकानन्द के सामने 'कुछ नहीं' कह दिया। मैंने आज तक उनके मुँह से वैसा भाषण कभी नहीं सुना ! डा० प्रसाद बोले—मैंने भी नहीं। किन्तु सभा में क्षोभ की लहर भी आयी। कई रवीन्द्र-भक्तों ने, सभा के बाद उनसे पूछा—'यह आपने क्या कह दिया ?' दिनकरजी बोले, 'मुझे याद नहीं कि मैंने क्या कहा ? लेकिन, जो कुछ भी कहा—उसकी सफाई मैं नहीं दूँगा।' एक गाँधी-भक्त ने पूछा—'दिनकरजी, आपने समयोपयोगी भाषण देने के लिए वैसा कहा या आप।...'

'जी नहीं, मैं अपनी बात पर अटल हूँ।'—शायद दिनकरजी ने इन्हीं शब्दों में उत्तर दिया था।

—किन्तु सुबह अखबार पढ़कर काँप गया !

रामकृष्ण की ओर मुँह करके पूछा "रामेश्वरम् और धनुषकोटि में यह क्या कर दिया आपने ठाकुर ?"—"दुर-साला ! आमार खुशी। तुमी जवाबदोही कोरनेवाला के रे ? तोमरा आटम-बोम फटाम-फोटोम कोरे सारा पृथ्वी के फाटाते पारिस, आर आमि दु-चार जायेगा—खेये फेलेछी क्षुधार ताड़ाय तो चेचाछिस ?"

"क्षुधार ताड़ाय ? तबे कि तुमी एकेबारे 'हंग्री' माने हंग्री जेनरेशनेर ?"

"हो-हो-हो-हो, साला भाग—नहले आमि एखूनी लेंगटो हबो—काछा खुले !

मैंने घर में कहा "आज खिचड़ी बनाओ। ठाकुर 'खिचड़ी' खायेंगे। He is Very हंग्री।"

जवाब मिला, "ठाकुर खाना चाहते हैं या अपनी तबीयत हुई है ?"

"एक ही बात है।"

'आज की रात शुरू से अन्त तक बैठकर—देखने देना ठाकुर।' – खिचड़ी-भोग देते समय मैंने अनुनय के स्वर में कहा,

आज प्रार्थना मण्डप में जगह मिल गयी, बैठने की। किन्तु 'लीला' जब शुरू हुई तो देखा, मैं औरतों के गिरोह में बैठा हूँ। उठने की चेष्टा की तो एक साथ एक दर्जन नारी कण्ठों से झिड़की निकली—'वोसे पड़ून !' नहीं, मैं औरतों के झुण्ड में नहीं– औरतें ही मर्दों के साथ बैठ गयी हैं !

सामने पर्दे पर ( भैरवी ) संन्यासिनी समझा रही हैं रामकृष्ण को—'वत्स ! तोमार मतन उन्मत्तता जाहार आसियाछे, से धन्य ! समग्र ब्रह्माण्डई पागल—केह धनेर जन्य केह सुखेर जन्य, केह नामेर जन्य, केह वा अन्य किछुर जन्य। सेई व्यक्ति-ई धन्य, जे ईश्वरेर जन्य पागल।'

फिर—जब सारदामणि पहली बार अपने स्वामी के पास आयीं। भैरवी (तन्त्र-गुरु) की इच्छा के विरुद्ध रामकृष्ण ने अपनी पत्नी की पूजा की। 'आमि जानियाछि सकल रमनीई आमार जननी। तथापि एखन तुमि जाहा बलिबे ताहाई प्रस्तुत आछि !'

माँ बोलीं—'आमार आपनाके जोर करिये संसारी करिबार इच्छा नाई आमि आपनार निकट आपनार सेवा एवं साधन-भजन सिखिते—'

मेरे पास बैठी हुई महिला रोने लगी। मैं भी, शायद रोने लगूँगा ! शायद क्यों सचमुच !

तन्त्र की शिक्षा भैरवी ने दी। तब आये तोतापुरी। परम पण्डित और दर्शनशास्त्रविद् संन्यासी—मायावादी तोतापुरी ! गुरुदास का जीवन है। निश्चय ही, ठाकुर रामकृष्ण की यह महिमा है कि वह इतना !

किन्तु, मैं जब कभी रामकृष्ण की 'लीला'—अर्थात् 'फिल्म' बनाऊँगा—रामकृष्ण के अन्य गुरुओं और साधनाओं की कहानी भी दिखलाऊँगा। तोतापुरी के बाद ही गोबिन्दराय को लाकर उपस्थित करूँगा—दक्षिणेश्वर। क्षत्रिय थे। किन्तु, एक भ्रातृत्व के आदर्श पर मुग्ध होकर मुसलमान हो गये हैं, गोविन्द राय। रामकृष्ण दौड़कर उनके पास जाते हैं– 'एसेछो ? आमि मुसलमान हब !'

गोविन्दराय ने अचरज से पूछा– 'क्या ?'

– 'आमि मुसलमान हब ! इसलामेर पथओ तो एकटा पथ। इस रास्ते से कितने ही साधक वांछित धाम तक पहुँचे हैं। मैं ही उस पथ को क्यों छोड़ दूँ ? तुमी आमाके दीक्षा दाओ।'

... ला इला हिल्लिल्लाह मुहम्मद उर्र सूलिल्लाह ! – गोबिन्दराय दीक्षा देते हैं फिर, रामकृष्ण को दो गजी लुँगी पहनाकर पेश करूँगा। वह मन्दिर के आस-पास तक नहीं फटकता। मूर्तिपूजा की निन्दा करता है। देव-देवी का नाम सुनकर चिढ़ता है। नित्य पाँचों वक्त की नमाज। अजान। पोखरे में जाकर वजू कर रहा है। नमाज पढ़ते

[illegible] चेहरे पर व्याकुलता का भाव। स्पष्ट [illegible]। अन्त में, एक वृद्ध फकीर, जिसके बड़े-[illegible] बाल तन के समान सुफेद हैं, सुफेद दाढ़ी - गले [illegible] कांध को माला, हाथ में लाठी। एक स्वर्गीय-[illegible] मुख-मण्डल पर - तुमी एसेछो ? वेश ··। [illegible] रामकृष्ण ने देखा, एक मुसलमान 'सानकी' (थाली) में भात लेकर आया। वह, वहाँ एकत्रित [illegible] को खिलाकर रामकृष्ण को भी एक [illegible] दे गया। - माँ आमाके देखालेन एक ही है— [illegible] नहीं !

गोविन्दराय के बाद दिखलाऊँगा - शम्भू [illegible] का घर ! रामकृष्ण, दीवार पर टँगी हुई एक तस्वीर को देख रहे हैं। तस्वीर - मरियम की [illegible], बालक क्राइस्ट ! पूछते हैं रामकृष्ण - 'ये [illegible] ? बोलो न ?' शम्भू मल्लिक जवाब देते [illegible]—'वह एक मेम-साहब और उसके बेटे की तस्वीर है।'

रामकृष्ण बालक की तरह विश्वास कर लेते [illegible]। लेकिन, तस्वीर से आँखें हटा नहीं सकते - [illegible] पूछते हैं 'कहो न, ठीक-ठीक। कौन हैं ? वह [illegible] कोई देवशिशु जैसा लगता है। और माँ ? वह [illegible] कोई पवित्रता की साक्षात् प्रतिमा ही है।'

शम्भू···माँ मेरी और येसु ख्रिष्ट !

रामकृष्ण देखते ही रहते हैं, एकटक—माँ [illegible]दा की गोदी में बाल गोपाल !

कट टु: गिर्जाघर के घण्टे की आवाज। गिर्जा-[illegible]र के अन्दर सभी प्रार्थना कर रहे हैं। बाहर, [illegible]ढ़ियों के पास रामकृष्ण डगमग कर चलते हैं — [illegible]रे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ते हैं। फिर, दरवाजे के [illegible] आकर खड़े हो जाते हैं !

रामकृष्ण देखते हैं यह तो काली-मन्दिर ही [illegible]। भीतर, वेदी पर माँ बैठी है। माँ जगदम्बा। [illegible] नवतारिणी।

रामकृष्ण की आँखों से आँसू झर रहे हैं। आनन्द के आँसू !

गिर्जाघर से लौटते हुए, ईसाईभक्त श्री मिश्र, देखते हैं रामकृष्ण को और चिल्लाते हैं—'यही ईश्वर हैं, यही राम और यही कृष्ण ··।'

—,आरे दुत्। बलछि, की देखछो ?'

मिश्र भरे गले से कहता है—'सिर्फ आपको देख रहा हूँ। आप और यीशु एक ··!'

रामकृष्ण पर—यीशु का भाव। समाधिस्थ !

कट टु: मथुरबाबू का दक्षिणेश्वर स्थित बँगला। माइकेल मधुसूदन दत्त आये हैं। रामकृष्ण को देखना चाहते हैं। रामकृष्ण जाना नहीं चाहते— 'अरे बाप ! उतना बड़ा आदमी—उसके पास खड़ा हो सकूँगा ? ओ, नारायण शास्त्री - तुम मेरे साथ चलो। आमि इंगरेजी-टिंगरेजी जानि ना।'

कट टु: तीर्थयात्रा। वैद्यनाथ धाम में मथुरबाबू के साथ रामकृष्ण। साथ में सिपाही, बरकन्दाज, अमला फैला खजांची वगैरह हैं—मथुरबाबू के। हठात्, रामकृष्ण की दृष्टि—नंग-धड़ंग और गरीब संथालों पर पड़ती है। वे जिद पकड़ते हैं—इन्हें भोजन कराओ। कपड़े दो। नहीं तो, मैं भी नहीं खाऊँगा। मैं भी नंगा हो जाऊँगा। अरे, ये ही असल शिव हैं। क्या ? नहीं है सम्भव ? तब रखो अपना तीर्थ—आमि जाबो न कोथाओ।

कट टु: सभी गरीब, कंगाल, अर्द्धनग्नों की भीड़ तृप्तिपूर्वक भोजन कर रहे हैं सभी। रामकृष्ण रो रहे हैं।

अचानक, धक्का खाकर— मन की तस्वीरें मिट गयीं। सामने, पर्दे पर श्री गिरीश घोष आ चुके थे। नशे में धुत्त दक्षिणेश्वर आये हैं। आँगन में आकर लड़-खड़ाती हुई आवाज में पुकारते हैं— 'केउ आछे ए-ए-इ खाने ? नेइ केउ !' रामकृष्ण अन्दर से निकलते हैं।

गिरीश घोष के अभिनय से एवं उसके संवाद को सुनकर लोग हँस रहे हैं।

मैं, किन्तु अपनी तस्वीर में यह भी दिखलाऊँगा कि रामकृष्ण गिरीष घोष का नाटक देखने गये हैं। बाक्स में बैठे हैं! नायिकाओं को स्टेज पर देखकर प्रणाम करते हैं। सत्ति आमि महामाया के देखछी!...

पीछे खड़े, बकबक करनेवाले नौजवानों में से एक ने पूछा—'की रे सब सत्ति ना गांजा?'

मेरे मन में एक जवाब आया। जोर गले से जवाब देना चाहता था। किन्तु, चुप रहना ही धर्म समझा।

पर, जिन लड़कियो का सान्निध्य पाकर वे नौजवान इतना मुखर थे—उन्हीं लड़कियों में से एक ने जवाब देना अपना धर्म समझा। आश्चर्य, उसने ठीक वही जवाब दिया—अक्षर-अक्षर—जो मैं देता। वह उलट कर बोली—'आप जिस स्थान पर खड़े हैं, वह सच है या झूठ? यदि सच है तो सामने पर्दे पर जो कुछ देख रहे हैं, वह भी सच है।'

युवकों की टोली वहाँ से हट गयी।

हाँ, मैं हिन्दी में बनाऊँगा, तस्वीर। नहीं, जरा भी अस्वाभाविक नहीं लगेगी हिन्दी बोली, रामकृष्ण के मुँह में। किसी भी पात्र के मुँह में।.. मेरे पास कुंजी है एक।

निरालाजी ने श्री 'म' लिखित 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' का अनुवाद किया है। एक बार, आश्रम में रामकृष्ण जन्मोत्सव के दिन बड़े महाराज स्वामी वीतशोकानन्द ने मुझसे कहा—'आप ही पाठ करें।'

यद्यपि सुननेवालों में अधिक संख्या बंग-भाषियों की ही थी, पाठ हिन्दी में होना था। जब पाठ समाप्त हुआ तो बड़े महाराज, सुनील महाराज तथा स्टुडेण्ट-होम के विद्यार्थियों ने एक स्वर में कहा 'अचरज की बात! जरा भी अस्वाभाविक नहीं। रामकृष्ण ने बंगला में ये बातें कही थीं—कभी नहीं मन में उठा।'

बंगला से हिन्दी में अनुवाद करनेवालों से मेरा नम्र निवेदन होता—वे एक बार इस ग्रन्थ का अनुवाद, मूल से मिलाकर पढ़ जायें। बंगला की पुरानी से लेकर तरुणतम-पीढ़ी की रचनाओं के अनुवाद-कर्म में सहायता मिलेगी। निराला ने अनुवाद नहीं किया है—पूजा की है भाव-विभोर होकर! तन्मय होकर।

पर्दे पर, तिरोधान की तैयारी कर रहे हैं रामकृष्ण। अन्तिम क्षण: सारदामणि से कहते हैं—'वह, मेरी तस्वीर ले आओ इधर।' सारदामणि, तस्वीर ले आती हैं। रामकृष्ण कहते हैं—'थोड़ा फूल भी देना।'

...रामकृष्ण ने अपनी तस्वीर पर पुष्पार्पित किया। भक्तिपूर्वक प्रणाम किया—देखना। घर-घर में इस तस्वीर की पूजा होगी...घरे-घरे पूजा हबे!

## समाप्त

लेकिन, मैं यहीं समाप्त नहीं करूँगा।

दिखलाऊँगा—विधवा सारदामणि हाथ से 'बाला' खोल रही हैं। रामकृष्ण की तस्वीर हँसकर कहती है—केन गो? आमि कि काथाओ गेछि। ए तो ए घर—आर ओ घर?.. मैं कहीं गया थोड़े हूँ। यही तो, इस घर से—उस घर में! आमि कि मरेछि जे विधवार वेष धरबे?

# एक दुर्लभ भेंट

—एक कार्यकर्ता
विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी

[हमारे युवजन प्रायः अपनी आशंका प्रकट करते हुए कहते हैं कि वे समाज की सेवा कैसे कर सकते हैं। यहां, इस सच्ची जीवन-कथा में, ऐसे प्रश्नों का उत्तर है।

विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी की अंग्रेजी मासिक पत्रिका "युवा भारती" के मार्च, १९९१ अंक में प्रकाशित 'ए रेयर इनकाउन्टर' शीर्षक लेख काफी चर्चित हुआ है। इसका मलयालम भाषा में अनुवाद रामकृष्ण मिशन के त्रिचुर केन्द्र की पत्रिका "प्रबुद्ध केरल में भी हो चुका है। यहाँ मूल अंग्रेजी लेख का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं, डॉ० केदार नाथ लाभ।—सं०]

९ दिसम्बर १९९० का दिन था। मैं अभी अभी प्रायः ६-३० बजे प्रातः बाहर निकला था और एक ऑटो रिक्शे की तलाश कर रहा था जो मुझे मेरे ऑफिस तक ले जाता। ज्यों ही मैं बाहर आया, मैंने देखा कि टैक्सी स्टैण्ड में एक ऑटो रिक्शा लगा है जिसका चालक अन्य चालकों से भिन्न दीख रहा था। उसने बिल्कुल शुद्ध साफ धोती पहन रखी थी। उसके चौड़े ललाट पर प्रचुर रूप में विभूति चंदन, और कुमकुम लगे थे। उसकी आँखें व्यापक विवेक के एक विशेष प्रकाश से चमक रही थीं। वह तीस वर्षों से भी कम उम्र का युवक था।

हमारे इशारे से बुलाने पर वह अपने ऑटो रिक्शा को लेकर आया और बिना किसी बतंगड़ के वह मुझे ट्रिप्लीकेन के लिए ले चला। यात्रा के क्रम में मैंने यूँ ही कहा कि उसके ऑटो रिक्शा का अच्छी तरह रख-रखाव हुआ है और बिना किसी बाधा के चल रहा है। इस बात पर उसने कहा, "हाँ, हाँ! मैंने अभी-अभी इसकी कुछ मामूली मरम्मतों पर ५०० रुपयों से अधिक ही खर्च कर दिये हैं जिसके लिए मेरी माँ मुझ पर बहुत क्रोधित हो गयीं।" इस बात ने मुझे उसकी माँ के विषय में पूछने के लिए प्रेरित कर दिया। उसने कहा, प्रतिदिन प्रातः काल वह बहुत सवेरे उठ जाता है, एक घंटे के लगभग पूजा करता है, और अपनी माँ की पादपूजा भी करता है। अपनी माँ के प्रति उस युवक की सार्थक भक्ति से मैं स्वभावतः मुग्ध हो गया था।

उसने कहना जारी रखा, "मेरे पिताजी नहीं हैं, मेरा अपना कोई परिवार नहीं है, जो कुछ है वह मात्र मेरी माँ है। मेरा सारा जीवन उसी के चारों ओर केन्द्रित है। मेरे लिए दिन उसके चरणों की पूजा-अराधना से शुरू होता है। प्रतिदिन मैं जो कुछ उपार्जित करता हूँ, वह उसे दे देता हूँ। सांसारिक जीवन में फँसने का मेरा कोई इरादा नहीं है।" बातचीत जारी रही। तब तक मैं ट्रिप्लीकेन पहुँच गया था जहाँ कुछ वस्तुएँ संग्रह करने को मैंने थोड़ी देर के लिए उतर जाना चाहा। मैं आगे भी जाना चाहता था। इसीलिए मैंने उससे पूछा कि क्या वह मुझे वहाँ ले जाएगा? उसने कहा, "खुशी से", और कुछ वस्तुएँ संग्रह

करने तक वह मेरे लिए शान्तिपूर्वक रुका रहा।

जिस समय हमलोग यात्रा कर रहे थे, मैंने उसे अपने विषय में कुछ और बताने को प्रेरित किया और मैंने उससे जो कुछ सुना वह एक चौंका देनेवाला रहस्योद्घाटन था कि, किस प्रकार एक उत्साही युवक बिना किसी निजी साज-सामान या उपकरण के अपने इर्दगिर्द के लोगों के कल्याण के लिए ठोस योगदान कर सकता है। उसने मुझे बताया कि प्रतिदिन अपने पहले सवारी से प्राप्त भाड़े से वह पाँच इडलियों (चावल के आटे का बना एक मद्रासी भोजन) का एक पैकेट खरीदता है और एक दरिद्र भिखारी को जो न केवल एक भिखारी है बल्कि विक्षिप्त भी है और बिना यह जाने चक्कर काटता रहता है कि कब और क्या खाना है खिला देता है। पुनः दोपहर के १२ बजे नित्य एक ऐसे ही पागल को खिलाने के लिए वह भात का एक पैकेट खरीदता है। उसकी सद्भावना यहीं समाप्त नहीं हो जाती। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने बताया कि जब कभी वह सड़क पर कहीं उपेक्षित पड़े हुए मृत व्यक्ति को देखता है, वह पुलिस को इसकी सूचना देता है और उसकी सहमति से उस शव का भार ले लेता है, उसे नहलाता है, नया वस्त्र पहनाता है, माला पहनाता है, कर्पूर की आरती करता है, अपने ऑटो रिक्शा पर लादकर उसे निकट के श्मशान स्थल पर ले जाता है और मर्यादित ढंग से उसका दाह संस्कार करता है। यह कुछ ऐसा था जिसने वस्तुतः मेरे मर्म को झकझोर दिया। मैंने उससे पूछा कि अब तक उसने इस प्रकार कितने शवों का संस्कार किया है? उसने कहा, पाँच का। फिर उसने आगे कहा कि यदि वह कभी किसी व्यक्ति को डाक्टरी चिकित्सा की सहायता के लिए सड़क पर पड़ा हुआ देखता है तो वह उस व्यक्ति को ले जाकर सरकारी अस्पताल में भर्ती कराता है और उसके स्वस्थ हो जाने तक उसकी आवश्यकताओं की देखभाल करता है। इस सम्बन्ध में उसने एक नवयुवक की कहानी कही जो चलती बस में चढ़ने का प्रयास करते हुए आइ. आइ. टी. के नजदीक गिर कर बेहोश हो गया था। सड़क पर कोई आदमी नहीं था। सौभाग्यवश, वह उसी रास्ते आया, उस युवक को उठा लिया, अस्पताल में दाखिल कराया और उसकी पुस्तक से उसके पिता का पता पाकर उन्हें उस लड़के के पास ले आया। उस पिता के हृदय से कृतज्ञता का कैसा प्रवाह उमड़ा होगा इसकी कल्पना कोई भी भली-भाँति कर सकता है।

अब तक मैं इस आराध्य युवक के वर्णन से पूरी तरह हिल गया था। मैंने उससे जिज्ञासा की कि ऐसी सेवा करने के मूल में उसकी प्रेरणा का स्रोत क्या था। उसने कहा कि वह मेलमारुवत्तुर की आदि पराशक्ति का बड़ा भक्त है और उसके गुरु ने उसे माँ को केवल मन्दिर में ही नहीं, बल्कि सर्वत्र देखने और जब कभी कोई अवसर उपस्थित हो, तब हर प्रकार से उसकी (माँ के रूप में जीव की) सेवा करने का आदेश दिया है। उसने और भी कहा कि यात्रियों की बातचीत सुनकर जब कभी उसे यह ज्ञात होता है कि उसके ऑटो रिक्शा में बैठे यात्री किसी प्रकार के संकट में हैं तब वह उनके नाम पर जगन्माता से उनके कल्याण के लिए विशेष प्रार्थना करता है।

परम भक्ति और वचनबद्धता के भाव से भर कर उसने कहा कि मद्रास के निकट कोडम्बक्कम में माँ का एक मन्दिर बनाने वाला है और १०,०००/- रुपयों की लागत से माँ की जो प्रतिमा वहाँ स्थापित होगी, वे रुपये उस योजना के लिए वह दानस्वरूप अर्पित करेगा। इसके लिए अपने स्वल्प उपार्जन से अब तक वह ८,०००/रुपये दे भी चुका है। वह आशा करता था कि मार्च तक वह कुल रुपये जमा कर देने में समर्थ होगा।

हमलोग अपने गन्तव्य स्थान कोट्टरपुरम् के नजदीक आ गये थे। अपने अन्तस्तल की गहराइयों

से उमड़ते अकथनीय आनन्द के साथ, अब तक मिले व्यक्तियों में से महत्तम व्यक्ति से मिलने के उपरान्त मैं ऑटो रिक्शा से उतर गया।

हमारे पाठक उसका नाम और उसके ऑटो रिक्शा का नम्बर जानना चाह सकते हैं। यह कोई गल्प नहीं है। यह एक सच्ची कहानी है। उसका नाम है—'ओम् शक्ति ऑटो राजा' और उसके ऑटो रिक्शा का नम्बर टी० सी० डब्लू० ७६२७ है।

# विवेक शिखा–स्थायी कोष के दाता

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | एक भक्तिमती महिला | — | इलाहाबाद | ५,००० रुपये |
| २. | एक शुभैषी | — | पुणे | २०० रुपये |
| ३. | श्री एस० के० चक्रवर्ती | — | इलाहाबाद | २७ रुपये |
| ४. | श्री पृथ्वीराज शर्मा | — | ठण्डी, राजस्थान | ३०० रुपये |
| ५. | श्री दीपक श्रीवास्तव | — | पटना (बिहार) | १०१ रुपये |
| ६. | एक शुभ चिन्तक | — | इलाहाबाद | २५० रुपये |
| ७. | भी० वी० उरकुडे | — | चन्द्रपुर (महाराष्ट्र) | ५० रुपये |
| ८. | श्रीमती शान्ति देवी | — | इन्दौर (मध्य प्रदेश) | १०० रुपये |
| ९. | श्री एस० डी० शर्मा | — | अहमदाबाद | ३०१ रुपये |
| १०. | श्रीमती प्रभा भार्गव | — | बीकानेर (राजस्थान) | २०० रुपये |
| ११. | श्री रामलायक सिंह | — | सम्होता (छपरा) | २५ रुपये |
| १२. | डा० एस पी० भार्गव | — | अजमेर | १०० रुपये |
| १३. | श्री राम छविला सिंह | — | मुजफ्फरपुर | २५ रुपये |
| १४. | श्री निखिल शिवहरे | — | दमोह (म० प्र०) | १५१ रुपये |
| १५. | श्रीमती उषारानी कर्ण | — | सुरसंड, (सीतामढ़ी) | १०० रुपये |
| १६. | श्री पी० सी० सरकार | — | नरेन्द्रपुर (प० ब०) | १०० रुपये |
| १७. | श्रीमती मीरा मित्रा | — | इलाहाबाद | २०१ रुपये |
| १८. | श्री गोपाल शं० तायवाडे | — | अमरावती (महाराष्ट्र) | १०० रुपये |
| १९. | श्री महादेव शि० गुंडावार | — | भद्रावती (महाराष्ट्र) | ५० रुपये |
| २०. | श्री राजीव कुमार राजू | — | सैदपुर, पटना-४ | ३१ रुपये |
| २१. | श्री राज सिंह | — | गाजियाबाद (उ० प्र०) | ५० रुपये |

# कम्बल ने नहीं छोड़ा

[ लोभ पाप है, आसक्ति मृत्यु समान है, त्याग में ही सम्पूर्ण आनन्द और जीने की शक्ति निहित है। ]

साधुओं का एक दल तीर्थ भ्रमण कर रहा था। चलते-चलते उन्होंने एक पर्वत के पास एक रमणीय जगह देखी। वह एक निर्जन स्थान था तथा रास्ते के पास ही एक खूबसूरत झरना था। उनको यह स्थान बहुत ही पसंद आया। सबने मिलकर यह विचार किया कि दोपहर के समय वे लोग वहीं विश्राम करेंगे।

कम्बल और कमंडल छोड़ वे लोग काम में लग गये। कुछ लकड़ी लाने गये, कुछ खाने-पीने की सामग्री जुटाने में लग गये तथा कमंडल हाथ में लेकर कुछ स्नान करने झरने की ओर गये। कुछ समय में ही खाना वगैरह पक गया। ईश्वर का स्मरण कर सबने आहार किया।

चलते-चलते वे लोग काफी थक चुके थे। खाने-पीने के बाद एक वृक्ष की छाया में इधर-उधर कम्बल बिछा कर वे लोग लेट गये। लेटते ही उन्हें गहरी नींद आ गयी।

बहुत ही सुनसान स्थान था। कोई व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ता था। कभी कभार कुछ अनजान पक्षी आवाज देते थे। पास में ही झरने का पानी कल कल स्वर में बह रहा था। झरने के स्वर में झींगुरों की आवाज ने मिलकर लोरियाँ सुनाकर साधुओं को शीघ्र ही सुला दिया।

बहुत जल्दी ही सभी साधु गहरी नींद में बेहोश से हो गये। इनमें से एक मोटा और लालची साधु पेड़ के तने पर सिर टिका कर बड़े आराम से सो रहा था। थोड़ा समय जाते-जाते झरने और झींगुरों की आवाज के साथ उसकी नाक भी गरजने लगी, यद्यपि इससे अन्य साधुओं की नींद को कोई बाधा तो नहीं पहुँची, पर दो गिलहरियाँ डर के मारे भाग गयीं जो कि पास ही खेल रही थीं।

सभी साधु सो रहे थे। पर अचानक जोरदार आवाज से उनकी नींद टूट गयी। उन्होंने देखा कि पास ही की एक झाड़ी से एक जानवर यह आवाज कर रहा है। इतना देखते ही वे अपनी-अपनी चीजें लेकर जान बचाने के लिए भागे। वह स्थूलकाय साधु भी हांफते हांफते इनके पीछे दौड़ने लगा। कुछ दूर जाने के बाद उसे याद आया कि वह अपना कम्बल लाना ही भूल गया है।

अपने साथियों को बुलाकर उसने यह बात कही। सभी रुक गये और उनमें से एक ने कहा तुम्हारा कम्बल दिख रहा है। उस पेड़ के ही नीचे पड़ा हुआ है। जाकर ले आओ। हम लोग यही पर रुक रहे हैं। सभी ने देखा कि साधु का कम्बल दूर उस पेड़ के नीचे पड़ा हुआ है। कम्बल के बिना तो काम नहीं चलेगा इसलिए उसे लाना ही था। डर से काँपता हुआ साधु अपना कम्बल लाने चला।

साधुओं के भागने के बाद जंगल से एक भालू निकलकर काले रंग के कम्बल को देखा। भगवान

लगे उसको क्या सूझी कि उसने साधुओं का पीछा करना छोड़कर कम्बल के ऊपर बड़े आराम से उल्टा होकर लेट गया। दूर से भालू को देखकर साधु उसे कम्बल समझ रहे थे।

इधर मोटे बाबाजी का शरीर जितना मोटा था दिमाग भी उसी अनुपात में कमजोर था और ऊपर से डर के मारे उनकी बाकी बुद्धि भी घास चरने चली गयी थी। कम्बल के पास पहुँच कर भी उन्हें भालू के बारे में कुछ भी पता नहीं चला। क्योंकि उन्हें तो जल्दी से भागने की पड़ी थी पता नहीं कब क्या निकल आये।

जैसा सोचना वैसा करना। जैसे ही उन्होंने कम्बल उठाने के लिए हाथ बढ़ाया वैसे ही किसी चीज ने कम्बल में से हाथ बढ़ाकर साधु को पकड़ लिया और दोनों जमीन पर लुढ़कने लगे। साधु कम्बल को खींच रहे थे और कम्बल साधु को। दूर पर खड़े साधु के साथी वह दृश्य देख रहे थे।

उन्होंने दूर से चिल्लाकर कहा 'तुम कम्बल छोड़ कर भाग आओ।"

उनका कहना मानकर मोटे साधु ने अपने दोनों हाथ छोड़ दिये। पर उनके छोड़ने से क्या होगा, कम्बल तो उन्हें छोड़ने का नाम ही न ले रहा था।

दूर से उसके साथियों ने एक बार फिर से चिल्लाकर कहा कि कम्बल छोड़कर प्राण बचाकर भाग आओ।

मोटे साधु की तरफ से आखिरी उत्तर आया, "भाई मैंने तो कम्बल छोड़ दिया है पर मुझे तो वह पकड़े हुए है।"

# विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

आत्मा उपाधि का धर्म किस प्रकार अपने मे आरोपित करता है, उसका दृष्टान्त—

उपाधिसम्बन्ध वशात्परात्मा
ह्युपाधिधर्मानिनुभाति तद्गुणः।
अयोविकारानविकारिवह्निवत्
सदैक रुपोऽपि परः स्वभावात् ।१९१

आत्मा स्वभावतः उपाधिसमूह से भिन्न एवं परिवर्तन रहित होने पर भी (नामरुपादि) उपाधि समूह के साथ सम्बन्ध वश उपाधि समूहों के गुणों को आश्रित कर प्रकाशित होता है। दृष्टान्त स्वरूप अग्नि का गोल लम्बा आदि कोई आकार न होने पर भी उसमें फेंके गये विभिन्न आकार के लौह खण्ड के अन्दर प्रवेश कर उसी के आकार में प्रकाशित होता है, उसी प्रकार उपाधि अवलम्बित आत्मा भी उपाधिमान् रूप में प्रकाशित होता है। १९१

उपाधि के दोष या गुण के साथ आत्मा किंचित मात्र लिप्त नहीं होता।

अब तक गुरुदेव ने जो कुछ कहा उसका संक्षेप इस प्रकार है—देहादि-संघात से आत्म अध्यास ही जीव का बन्धन है। स्वरूप विषय में अज्ञान रूप आवरण एवं विक्षेप से बन्धन की उत्पत्ति होती है। जब तक अज्ञान है तब तक बन्धन भी है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार धागे के बिना कपड़ा नहीं हो सकता। ब्रह्म एवं आत्मा की ऐक्यानुभुति द्वारा बन्धन की निवृति होती है। बन्धन-निवृति और मोक्ष एक ही वस्तु है। अविद्या से आरम्भ कर देह तक जड़ समूह अनात्मा है जड़ वर्ग का साक्षी स्वरूप चिदात्मा ही परमात्मा है।

गुरु के उपदेश से शिष्य की संशयनिवृत्ति न होने पर शिष्य ने और विस्तार पूर्वक जानने की इच्छा की।

। शिष्य उवाच ।

भ्रमेणाप्यन्यथा वाऽस्तु जीवभावः परात्मनः ।
तदुपाधेरनादित्वान्नाशाद्वेर्नाश इष्यते ।१९२।।

शिष्य ने कहा– शुद्ध आत्मा का जीव-भाव स्वीकार भ्रम वश हो अथवा अन्य किसी कारण से हो, वह जिस उपाधि को धारण करता है, उस अविद्यारूप उपाधि को अनादि माना जाता है। और अनादि वस्तु का नाश सम्भव नहीं है। १९२

अतोऽस्य जीवभावोऽपि नित्या भवति संसृतिः ।
न निवर्तेत सन्मोक्षः कथं मे श्रीगुरो वद ।।१९३।।

उपाधि अनादि होने के कारण देहाभिमानी आत्मा का जीव भाव से निवृत्ति नहीं हो पाता है। अतः उसे संसार के यातायात में सदा चलते रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था मे मुझे मोक्ष कैसे मिलेगी, हे गुरो, मुझे यह समझाइए।१९३

श्री गुरुरुवाच ।

सम्यक् पृष्टं त्वया विद्वन्सावधानेन तच्छृणु ।
प्रमाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना ।।१९४।

श्री गुरु ने कहा –हे बुद्धिमान् शिष्य, तुमने अति उत्तम प्रश्न किया। अज्ञान से उद्भूत मिथ्या कल्पना (आत्मा का जीवभाव) कभी भी सत्य नहीं माना जा सकता। अपने प्रश्न का उत्तर ध्यान पूर्वक सुनो।१९४

शिष्य का प्रश्न—आत्मा का जीव भाव भ्रम से अथवा अन्य किसी कारण से होता है? भ्रम के अतिरिक्त अन्य किसी कारण को स्वीकार करने पर अर्थात भ्रम के अभाव को स्वीकार करने पर— आत्मा के जीव भाव को सत्य मानना पड़ता है। नैयायिक गण आत्मा के जीव भाव को सत्य स्वीकार करते हैं। परन्तु वेदान्त शास्त्र के विचारानुसार आत्मा का जीव भाव भ्रम कल्पित है – गुरु ने ऐसा उत्तर दिया। आत्मा का जीवत्व सत्य मानने पर 'यह देह ही आत्मा है' ऐसा स्वीकार करने में बाधा क्या है? परन्तु नैयायिकगण देह को आत्मा स्वीकार नहीं करते हैं।

आत्मा का जीवभाव सत्य प्रमाणित नहीं होता, इसका कारण बतलाते हैं —

भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः ।
न घटेतार्थ सम्बन्धो नभसो नीलतादिवत् ।।१९५।।

आकाश का नीला वर्ण (अथवा विशाल गमले की आकृति) जिस प्रकार अज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, असंग निष्क्रिय निराकार आत्मा का विषय के साथ सम्बन्ध बोध उसी प्रकार अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। १९५

आत्मा का विशेषण तीन श्रुतियों द्वारा बताया गया है (1) असंग – किसी भी विषय से सम्बन्ध शून्य। 'असंगो हि अयं पुरुषः।' बृः, ४/३/१५– 'यह आत्मा संगरहित है।' (२) निष्क्रिय – क्रियारहित।

'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनामिवानलम् ।।
श्वेः उ० ६/१९

(३) निराकृति—आकार शून्य। 'अस्थूलम् अनणुम् अह्रस्वम् अदीर्घम्' बृः उ० ३/८|८

आकाश का कोई रंग नहीं है। उसका रंग, आकृति आदि हमारे मन की कल्पना मात्र है। शुद्ध आत्मा का विषयों के साथ सम्बन्ध भी हमारे मन की कल्पना है।

अग्रिम नौ श्लोको मे उक्त सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है—

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य
प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः ।
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो
मोहापाये नास्त्यवस्तु स्वभावात् ।।१९६।

द्रष्टा, निर्गुण, अक्रिय, सभी जीवों के अन्तर मे सत्य ज्ञान आनन्दरूप मे प्रकाशित आत्मा का जीवभाव अज्ञान से उत्पन्न होता है, यह सत्य नहीं है। वह सत्य नहीं है इसी कारण जीव का मिथ्या ज्ञान दूर हो जाने पर जीवबुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

# स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

बेलुड़ मठ में रहते समय वे प्रतिदिन प्रातः-काल गुरुदेव को प्रणाम किया करते थे। सामान्यतः उनका यह प्रणाम बड़ा लम्बा होता था। इसे देख एक दिन एक गुरुभाई ने उनसे व्यंगपूर्वक कहा—'क्यों साधु, किसे प्रणाम कर रहे हो?' गुरुभाई के प्रश्न में व्यंग का आभास पाकर लाटू महाराज ने बड़े दर्प सहित कहा, 'क्यों? प्रत्यक्ष देवता को प्रणाम कर रहा हूँ।' यह सुनकर गुरुभाई पुनः बोले, 'भला कौन से प्रत्यक्ष देवता? मैं तो देख ही नहीं पा रहा हूँ।' इस पर लाटू महाराज ने कहा, 'ये रहे सूर्य नारायण! ये ही तो प्रत्यक्ष देवता हैं। ऐसे प्रत्यक्ष देवता और नहीं मिलेंगे। मैं तो उन्हीं को मानता हूँ, अन्य किसी देवता को प्रत्यक्ष नहीं मानता।' तब से ये गुरुभाई लाटू महाराज से भेंट होने पर अक्सर यही प्रसंग उठाकर पूछते, 'तुम्हारे प्रत्यक्ष देवता का क्या समाचार है?'

अब मठ में नियम बना कि सबको भोर में चार बजे उठकर ध्यान करना होगा। नियम बनाने के अगले दिन ही घण्टा बजाकर सबको जगा दिया गया। लाटू महाराज ने बताया था "यह नियम मुझे अच्छा नहीं लगा, इसलिए मैं बिना किसी से कुछ बताए मठ से चला जाना चाहता था। अगले दिन सुबह जब मैं धोती-गमछा लेकर निकलने लगा तो देखकर स्वामीजी ने कहा, कहाँ जा रहा है?' मैंने कहा, 'कलकत्ते जा रहा हूँ।' प्रश्न हुआ, 'क्यों?' तब मैंने स्वामीजी से कहा, 'तुम उस देश से आये हो, कितने ही नये-नये नियम-कानून बना रहे हो, मैं उन सबका पालन नहीं कर सकूँगा। मेरा मन अभी तक घड़ी का ऐसा पाबन्द नहीं हुआ कि तुम घण्टा बजाओगे और इसके साथ ही वह ध्यान में डूब जाएगा। कौन जाने मन कब ध्यान में बैठे? मेरा तो अभी इतना नहीं हुआ है, तुम्हारा यदि हुआ हो तो अच्छा ही है!' स्वामीजी ने कहा, 'तो फिर तू जा।' परन्तु फाटक पार होते न होते स्वामीजी मुझे लौटा लाये और बोले, 'तुझे इस नियम को मानने की आवश्यकता नहीं, तू जैसी इच्छा हो वैसे रहना। यह सब नियम तेरे लिए नहीं है। जो लोग नये-नये आये हैं, उन्हीं के लिए यह नियम बनाया गया है।" तब मैंने कहा, 'ऐसी बात है!' (श्रीयुत विभूतिभूषण मैत्र के नोट पर आधारित)।

एक दिन बाबूराम भाई ठीक समय पर नहीं उठ सका। यह संवाद पाकर स्वामीजी ने एक जन को कहा, 'जा, उसके कान के पास घण्टा बजाकर आ। उसने ऐसा ही किया, तिस पर भी बाबूराम भाई नहीं उठा। तब स्वामीजी ने स्वयं ही जाकर उसे उठा दिया। फिर चाय पीते समय स्वामीजी ने बाबूराम भाई से कहा, 'देखो, तुम लोग मठ के परिचालक हो, अतः तुम लोगों को थोड़ा अधिक ही नियम का पालन करना होगा। नियम बनाकर यदि तुम्हीं लोग उन नियम को न मानो, तो अन्य लोग ही उसे क्यों मानेंगे? स्वयं आचरण करके दूसरों को सिखाना चाहिए।' स्वामीजी की ये बातें सुनकर बाबूराम भाई बोला, 'आज उठ नहीं सका।

मैं समझता हूँ कि मेरे कारण सबको असुविधा हुई है। भाई, इसके लिए तुम एक नियम बना दो कि जो उठ नहीं सकेगा, उसे सजा मिलेगी।' बाबूराम भाई की बात पर स्वामीजी गम्भीर होकर बोले, 'तुझको मैं सजा दूंगा! ऐसी बात तू सोच भी कैसे सका बाबुराम!' स्वामीजी की आँखों में आँसू देखकर बाबूराम भाई रोने लगा। यह खबर राजा (स्वामी ब्रह्मानन्द) के पास भी पहुँची और वह तो बड़ी चिन्ता में पड़ गया। वहाँ आकर वह कहने लगा, 'तुम लोगों का इतना रोना-धोना कैसा चल रहा है? उसी दिन तो नियम बना था कि घण्टा बजने पर जो नहीं उठेगा, उसको उस दिन मठ से भोजन नहीं मिलेगा—माधुकरी करके खाना होगा।' यह सुनकर बाबूराम भाई बड़ा आनन्दित होकर बोला, 'राजा ने ठीक कहा है। मैं आज माधुकरी करूंगा।' देखो तो, उनके बीच कैसा अद्भुत प्रेम था—एक ने नियम तोड़ने के फल-स्वरूप सजा माँगी और उसी को सुनकर दूसरे की आँखों में पानी आ गया। उसके बाद एक अन्य ने दण्ड की व्यवस्था की और इस पर नियम भंग करनेवाला आनन्दित हो उठा। आपस में ऐसा प्रेम न होने पर क्या एक मठ चल सकता है? तुम लोगों के बीच वह प्रेम कहाँ है? जो नियम तोड़ता है, वह क्या माँगकर दण्ड स्वीकार करता है? या फिर सजा भोगकर अपने को भाग्यवान मानता है? अब तो देखता हूँ कि दण्ड की बात उठते ही वह दुःख-पूर्वक मठ छोड़कर चला जाता है। यह तो अच्छा नहीं! मठ में रहने से उसका नियम मानना होगा। वहाँ रहूँगा, पर नियम नहीं मानूँगा, ऐसा भाव उचित नहीं! इससे संघ टूट जाता है।"

एक बार कलकत्ते के किसी मठ के एक साधु को संघ से बहिस्कृत कर देने की बात उठी। वे साधु काशी में लाटू महाराज के पास आकर उन मठाध्यक्ष के विरुद्ध बहुत सी बातें कहने लगे। सुनकर लाटू महाराज ने उन्हें आड़े हाथों लिया और उनके समक्ष उपर्युक्त घटना का वर्णन किया। लाटू महराज की बातें सुनकर उन साधु ने अपने मठाध्यक्ष के पास जाकर अपनी गलती स्वीकार कर ली और स्वेच्छापूर्वक उनसे दण्ड ग्रहण किया। इस प्रकार मठाध्यक्ष के साथ उनका पुनर्मिलन हो गया।

१९००-१९०१ ई० के दौरान किसी समय जॉनसन नामक एक विदेशी सज्जन लाटू महाराज से मिलने आये थे। उनके साथ लाटू महाराज की क्या बातचीत हुई, यह हमें ज्ञात नहीं हो सकी।

---

केवल वही व्यक्ति सब की अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की है। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायेगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।

—स्वामी विवेकानन्द

# बैद्यनाथ च्यवनप्राश

## अब पोलीजार में उपलब्ध

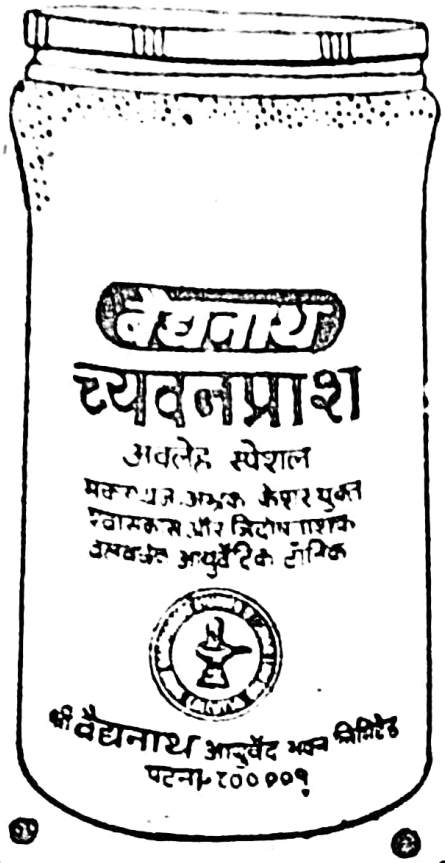

शोभे

कफ खांसी नाशक

यौवन

दिमागी ताजगी

विकास

बलवर्द्धक

## आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार कर

## श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या सी. एच. पी.—१४—८३

# स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| **धर्म तथा अध्यात्म** | |
| धर्म विज्ञान | ५.०० |
| धर्मतत्त्व | ४.५० |
| धर्मरहस्य | ३.०० |
| हिन्दूधर्म | ६.०० |
| हिन्दूधर्म के पक्ष में | २.०० |
| शिकागो वक्तृता | १.५० |
| नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान | ३.०० |
| भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता | ४.५० |
| भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश | २.०० |
| देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश) | ८.०० |
| कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य) | ४.०० |
| वेदान्त | ४.२५ |
| व्यावहारिक जीवन में वेदान्त | ३.५० |
| आत्मतत्त्व | ३.५० |
| आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग | ५.०० |
| मरणोत्तर जीवन | १.५० |

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| **योग** | |
| ज्ञानयोग | १४.०० |
| राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) | ६.०० |
| प्रेमयोग | ५.०० |
| कर्मयोग | ६.०० |
| भक्तियोग | ४.०० |
| ज्ञानयोग पर प्रवचन | २.०० |
| सरल राजयोग | ६.०० |
| **जीवनी** | |
| महापुरुषों की जीवनगाथाएँ | ६.०० |
| मेरे गुरुदेव | २.५० |
| ईशदूत ईसा | १.०० |
| पवहारी बाबा | २.०० |
| **सम्भाषणात्मक** | |
| विवेकानन्दजी के संग में | १३.०० |
| स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप | ५.०० |
| विवेकानन्दजी के संस्मरण | ५.०० |
| विवेकानन्दजी के सान्निध्य में | ३.०० |

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना - ४ में मुद्रित।